मूल्यों की कसौटी पर कुँवर नारायण की कविता

4.1 हिंदी कविता और मूल्य-चेतना

ज्ञान की अलग-अलग धाराओं में मूल्य को भिन्न-भिन्न तरीकों से व्याख्यायित किया गया है। साहित्य ने मूल्य की अवधारणा को अर्थशास्त्र से ग्रहण न करके नीतिशास्त्र से ग्रहण किया है। साहित्य में 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के'Values'शब्द का समानार्थी है। आर. के. मुखर्जी 'मूल्य' के विषय में में लिखते हैं- "values शब्द लैटिन भाषा के बाद Velese से बना है, जिसका अर्थ सुंदर, अच्छा (well) होता है। इस प्रकार मूल्य अथवा Value की परिभाषा यह बनती है, जो कुछ भी इच्छित है, वही मूल्य है।"[1]ध्यातव्य है कि मूल्य की अवधारणा अमूर्त है, उसे सिर्फ़ अनुभव किया जा सकता हैलेकिनमनुष्य के जीवन को सार्थक तरीके से संचालित करने के लिए मूल्य आवश्यक है।मूल्य के विषय में डॉ. जगदीश गुप्त लिखते हैं-

"कोई भी वस्तु अपने अस्तित्व के कारण ही मूल्यवान नहीं मानी जा सकती क्योंकि मूल्यबोध अस्तित्वबोध से भिन्न है।"[2]

जीवन का मूल्य से और साहित्य एवं विभिन्न कलाओं का जीवन से गहरा संबंध होता है। यही कारण है कि साहित्य एवं विभिन्न कलाओं के सन्दर्भ में मूल्य विशेष स्थान रखता है। यह मूल्य कई मायनों में हमारी सहज प्रवृत्ति या इच्छा पर आधारित होती है। यह एक कसौटी है जो हमारे आदर्श और प्रतिमान का नियामक भी है और निर्धारक भी। हिंदी साहित्य के प्रारंभिक दौर से ही रचनाकार का मूल्य-बोध उस काल विशेष के साहित्य की दशा एवं दिशा को निर्धारित करता रहा है। ध्यातव्य है कि साहित्य की अन्य विधाओं की तरह काव्य-लेखन और अध्ययन का उद्देश्य भी मनोरंजन मात्र नहीं हो सकता। एक पाठक के तौर पर जब हम विभिन्न साहित्यों का अध्ययन करते हुए भारतीय काव्यशास्त्र पर पहुँचते हैं, तो वहाँ पाते हैं कि विभिन्न काव्यशास्त्रियों

ने काव्य में मूल्य की उपयोगिता और अर्थवत्ता पर सुचिंतित और सार्थक मत का प्रतिपादन किया है। अधिकांश आचार्यों ने यह माना कि काव्य-लेखन का उद्देश्य मनोरंजन मात्र नहीं हो सकता। संस्कृत के इन आचार्यों ने काव्य-मूल्य को काव्य-प्रयोजन के रूप में व्याख्यायित किया है। भाव की दृष्टि से संस्कृत आचार्यों द्वारा प्रयुक्त 'प्रयोजन' शब्द उसी अर्थ का द्योतक है जिसे हम हिंदी काव्य के परवर्ती युग में 'मूल्य' शब्द के रूप में जानते और पहचानते हैं। काव्य-प्रयोजन की इस परंपरा को यदि हम आदि कवि वाल्मीकि के काव्य संबंधी धारणा से जोड़ें तो पाते हैं कि उन्होंने महाकाव्य की विशेषता बतलाते हुए कहा कि वह अर्थ, काम, मोक्ष रूपी गुणों से युक्त हो-

"तदिदं वर्तमिष्यावः सर्वं निखिलमादितः।

धर्म कामार्थसहितं श्रोतव्यमनसूयता।।"[3]

भारतीय काव्यशास्त्र में भरत मुनि के रस सिद्धांत से लेकर क्षेमेन्द्र के औचित्य सम्प्रदाय तक विभिन्न आचार्यों ने अलग-अलग तत्वों को काव्य की आत्मा माना है। भरत के मतानुसार नाट्य(काव्य) धर्म, यश, आयु, बुद्धि का संवर्द्धन करने वाला एवं लोकोपदेशक होता है-

"धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।।"[4]

जब आचार्य मम्मट द्वारा प्रयुक्त काव्य-प्रयोजन संबंधी विचार पर हम नज़र डालते हैं तो वहाँ पूर्व एवं परवर्ती आचार्यों के काव्य-प्रयोजन संबंधी धारणा की समाविष्टि पाते हैं। आचार्य मम्मट का मत दृष्टव्य है-

"काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेश युजे।"[5]

ध्यातव्य है कि मम्मट काव्य रचना को यश प्राप्ति का चिर स्थायी साधन, धन प्राप्ति का सबसे अधिक सम्मानजनक माध्यम, लोकव्यवहार ज्ञान का साधन, शिव से इतर, दुःख की क्षति करने वाला तथा शीघ्र संतुष्टि प्रदान करनेवाला साधन माना है।

- **पाश्चात्य-चिंतकों का काव्य-प्रयोजन के विषय में मत:**

पश्चिम के देशों में प्रायः काव्य को कलाओं के अंतर्गत माना गया है। प्लेटो से लेकर आई. ए. रिचर्ड्स तक कई पाश्चात्य विद्वानों ने कला के प्रयोजन के संबंध में अपने विचार प्रकट किये हैं। जहाँ एक ओर प्लेटो जैसे विद्वान काव्य एवं कलाओं का प्रयोजन आदर्श राज्य में उपयोगिता के आधार पर तय करते हैं, वहीं इनके परम शिष्य अरस्तू ने काव्य और कलाओं के प्रति अपेक्षाकृत उदार रवैया अपनाया है। डॉ. सत्यदेव चौधरी ने इन पाश्चात्य विद्वानों को तीन श्रेणियों में विभजित किया है-

1. लोकमंगलवादी
2. आनन्दवादी
3. समन्वयवादी

पहले वर्ग के विद्वानों में प्लेटो, रस्किन और टॉलस्टाय का नाम उल्लेखनीय है। प्लेटो 'लोकमंगल' को काव्य-प्रयोजनों में इस कदर महत्व देते हैं कि इसके अभाव में होमर की उत्कृष्ट काव्यकला की भी भर्त्सना करने से नहीं चूकते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने काव्य के प्रमुख लक्ष्यों में आतंरिक उदात्तभाव और सौन्दर्य को उद्घाटित करना को महत्व दिया है, साथ ही लोक-व्यवस्था और न्याय संगतता का परिपालन करने को काव्य का प्रमुख प्रयोजन माना-"No poet is to compose any verses which offend the views of law and justice"[6]- Plato: laws, 801 C-d

प्लेटो के काव्य मूल्य की अगर हम बात करें तो वे सौंदर्य की तुलना में सत्य-रूप की अभिव्यक्ति को अधिक महत्व देते हैं- "We are very conscious to her charm; but we may not on that account betray the truth."[7] –Plato:Republic, X, 607B

टॉल्स्टाय जैसे विद्वान चिंतकों का काव्य-कला के प्रयोजन के संदर्भ में जो मत है उसे हम,'कला जीवन के लिये' (Art for life) कि श्रेणी में रख सकते हैं।'कला क्या है?' इसपर विचार करते हुए टॉल्स्टाय लिखते हैं- "The destiny of art in our time is to transmit from the realm of reason to the realm of feeling the truth that well-being for menconsists in their being united together, and to set up, in place of existing reign of force, that kingdom of God that is, of love which we all recognise to be the aim of human life."[8] अर्थात् कला का उद्देश्य बुद्धि के क्षेत्र से भाव के क्षेत्र में उस सत्य को ले जाना है, जो यह बतलाता है कि मनुष्य का कल्याण उसके एक होकर रहने में तथा ईश्वर की उस बादशाहत को स्थापित करने में है, जो कि प्रेम पर आश्रित है और जिसको हम जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं।इस प्रकार हम देख सकते हैं कि टॉलस्टाय ने कला को आनंद न मानकर मानव-एकता को संवर्द्धित करने का माध्यम माना। रस्किन ने भी काव्य का मूल ध्येय वृहत्तर जनसमुदाय की अत्यधिक हितसाधना को माना है। उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त नव्यशास्त्रवादी युग के अनेक विद्वान चिंतकों ने भी आह्लाद प्राप्ति तथानैतिक शिक्षा को काव्य का प्रयोजन स्वीकारा है।

पाश्चात्य विचारकों में एक तबका उन विचारकों का रहा है जो हालांकि कला, नैतिकता के विरोधी नहीं हैं बावजूद इसके वे नैतिकता के प्रति आग्रहशील होने को श्रेष्ठ कलाकार के लिये आवश्यक नहीं मानते हैं। लोंजाइनस अपने पूर्व के कवियों द्वारा स्थापित इस मान्यता के विरोध में ठहरते हैं, जहाँ कवि का यह प्रधान कर्तव्य माना जाता था कि वह पाठक को नैतिक शिक्षा दे,

आह्लाद प्रदान करे एवं सुकर्म के लिए प्रेरित करे। इन्होंने पाठक को आनंद प्रदान करने को काव्य का एकमात्र लक्ष्य माना। इस धारणा को पोषित करने वाले आचार्यों में जर्मन मनीषी शिलर (18 वीं शती) का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

उन्नीसवीं शती का अन्त आते-आते यूरोप में यह धारणा दृढ़ होने लगी कि कला और नीति में कोई पारस्परिक संबंध नहीं है। स्विनबर्न जैसे चिंतकों का मत है कि कला का मूल्यांकन करने के लिए नैतिक मूल्यों का आधार ठीक नहीं, यह अनावश्यक है। अपने मत के पक्ष में उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि वर्जिल एवं ड्राइडन का प्रतिपाद्य क्रूर एवं निरंकुश राजाओं की प्रशस्ति था, फिर भी कला कि दृष्टि से उनका काव्य अत्यन्त उत्कृष्ट माना जाता है। जब हम बीसवीं शती के प्रारम्भिक विद्वानों के चिंतन पर नज़र डालते हैं तो 'कला कला के लिये' (Art for art) सिद्धांत का प्रतिपादन करने वालों में वाल्टर पेटर, ह्विसलर आदि को पाते हैं। आस्कर वाइल्ड और डॉ. ब्रेडले के समर्थन ने इसे और तीव्र किया।

पाश्चात्य समीक्षा-क्षेत्र में एक ओर काव्य-प्रयोजन के संदर्भ में उक्त धारणाओं के समर्थन और विरोध का द्वंद्व चलता रहा, वहीं प्रारंभ से ही एक ऐसा वर्ग भी पनपता दिखलाई देता है जिन्होंने इन दोनों परिपाटियों पर चलने के बजाय मध्यम मार्ग अपनाना बेहतर समझा। प्लेटो के प्रिय शिष्य और प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने प्लेटो का उत्तर सशक्त ढंग से दिया और यह प्रतिपादित किया कि कला का विशिष्ट उद्देश्य आनंद प्रदान करना है पर यह आनंद नीति सापेक्ष है, यह अनैतिक नहीं हो सकता। जहाँ एक ओर ड्राइडन जैसे विद्वान ने अरस्तू के इस कथन को विस्तार प्रदान किया वहीं होरेस ने आह्लाद और उपयोगिता के संबंध पर बल दिया। "The poet's aim is…to blend in one the delightful and the useful and the man who mingles the useful with the sweet, carries the day by charming his reader and at the same time instructing him."[9]इस वर्ग के प्रतिनिधि हस्ताक्षर के रूप में मैथ्यू

आर्नल्ड ने काव्य एवं कला का लक्ष्य जीवन की आलोचना को माना। "poetry is a criticism by the laws of poetic truth and poetic beauty."[10]प्लेटो से लेकर आई.ए. रिचर्ड्स तक कई पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य-प्रयोजन के संबंध में अपने विचार प्रकट किये हैं।

➢ हिंदी कविता में मूल्य-चेतना के विविध पड़ाव:

समाज को मर्यादित करने वाले मूल्यों को साहित्य में विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हुए देखा जा सकता है। मानव जीवन में 'साहित्य' या 'कला' की एक महत्वपूर्ण भूमिका यह भी है कि वह हमें उन मूल्यों के प्रति सजग रखती है जो मनुष्यता की बुनियाद हैं।साहित्य और मूल्य के विषय में धर्मवीर भारती लिखते हैं- "उसमें एक निरन्तर सहज वृत्ति होती है जिसके कारण वह मूल्यों द्वारा नियोजित मर्यादाओं को स्वीकार करता है और उसके साम्प्रदायिक स्वार्थों और निरर्थक कुतर्कों द्वारा स्थापित संकीर्ण अनुशासनों को अरसिक, असंस्कृत अन्यानुयायियों के लिए छोड़ देता है। इस प्रकार साहित्य को प्रशासित करनेवाली मर्यादाओं के द्विविध रूप होते हैं- सम्प्रदायगत और मूल्यगत। सम्प्रदायगत मर्यादा पतनोन्मुख और संकीर्ण होती है-मूल्यगत मर्यादा प्रगतिशील और विकासोन्मुख। जीवन्त साहित्य के लिए प्रथम अग्राह्य है, द्वितीय अनिवार्य"[11]

जिस काव्य-विधा का उद्गम ही करुणा से हुआ हो-"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतिः समाः/ यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्"[12] वह साम्प्रदायिक स्वार्थों से तो संचालित नहीं हो सकती। कविता में बाज़ार और सत्ता के जनविरोधी चरित्र को उद्घाटित करने की भी क्षमता है और उसका प्रतिपक्ष रचने की भी शक्ति है। हिंदी कविता अपने प्रारम्भ से लेकर आज तक विविध पड़ावों से होकर गुज़री है। कवियों की मूल्य-चेतना को कविता की शक्ल में अभिव्यक्त होते हुए देखा जा सकता है। कुछ कवियों की मूल्य-चेतना को समय तथा परिस्थिति ने निर्मित किया तो कुछ कवियों ने काल और परिस्थिति का अतिक्रमण कर अपनी लीक स्वयं बनायी।

जब हम आदिकालीन कविता पर नज़र डालते हैं तो एक ओर सिद्धों की बानी नज़र आती है तो दूसरी ओर सामंतों की स्तुति। इस कालावधि में कविता की एक तीसरी धारा जैन कवियों ने बहायी है। इन्होंने काव्य-मूल्य के रूप में स्वान्तः सुखाय को महत्त्व दिया। ध्यातव्य है कि जैनकवि राज्याश्रित नहीं रहे तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मूल संवेदना को उन्होंने आत्मसात किया। वहीं अगर सिद्ध साहित्य के कवियों की बात की जाए तो इनके यहाँ गुरू को अनिवार्य माना गया है एवं जीवन में उनकी महत्ता पर बल दिया गया है। भक्तिकाल, जिसे हिंदी साहित्य का स्वर्ण-युग भी कहा जाता है कि सामाजिक-चेतना की पीठिका के रूप में सिद्ध साहित्य को स्वीकार किया जा सकता है। बाद के वर्षों में कबीर में रूढ़ियों के विरोध की जो प्रवृत्ति लक्षित की जाती है उसमें सिद्ध साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है।

जब हम भक्तिकालीन कवियों की मूल्य-चेतना का अनुशीलन करते हैं तो पाते हैं कि इसके केंद्र में 'लोकहित की भावना' है। एक ओर जहाँ इस दौर की कविताओं में भक्ति की प्रधानता रही है, गुरू की महिमा का बखान है तो वहीं दूसरी ओर सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह का भाव तथा नीति पर बल दिया गया है।भक्ति-आंदोलन के जिस अखिल भारतीय स्वरूप की बात बार-बार की जाती है उसकी एक महत्वपूर्ण वजह इस समयावधि की कविताओं में निहित मूल्य-चेतना है। भक्ति की अवधारणा को जिन तरीकों से वर्गीकृत किया जाता रहा है उनमें निर्गुण एवं सगुण भक्ति के रूप में वर्गीकरण सबसे प्रचलित वर्गीकरण है। दोनों धाराओंके कवियों की पूजा-पद्धति अलग है, मान्यताएँ अलग हैं, विश्वास अलग हैं बावजूद इसके जब सगुण भक्त किसी जटिल दार्शनिक समस्या पर विचार करते हैं तो निर्गुण कवियों की तरह सोचते नज़र आते हैं और जब निर्गुण भक्त-कवि अपने ईश्वर की आराधना करते हैं तो कई बार निर्गुण-सगुण के अंतर को भूलकर भक्ति में मग्न होते हैं। इन कवियों के जीवन-मूल्य और काव्य-मूल्य अलग-अलग होते हुए भी किसी बिंदु पर मिलते नज़र आते हैं।भक्तिकालीन कवियों ने जिन मूल्यों को अपने जीवन और काव्य में स्थान दिया उसकी वजह से ही ये कवि जन-कवि कहलाए

और इस अवधि के ज़्यादातर कवियों ने राज्याश्रय में कविता लेखन के बजाय लोक-भाषा में सामान्य जन को केंद्र में रखकर कविता लिखी।

जब हम रीतिकालीन कवियों की मूल्यगत चेतना पर नज़र डालते हैं तो पाते हैं कि इन कवियों ने मनुष्य के शरीर को हर क़िस्म के आध्यात्मिक आवरण से आज़ाद कर दिया। नायिका के नख से शिख तक का वर्णन जिस अंतरंगता से इन कवियों ने किया वह भक्तिकालीन कविता के ठीक विपरीत है। 'प्रेम' रीतिकालीन कविता का प्रधान मूल्य है। चाहे वो रीतिबद्ध कवि हों या रीतिमुक्त, 'प्रेम' को सभी ने अपनी कविता में भिन्न-भिन्न रूपों से अभिव्यक्त किया है। इस अभिव्यक्ति का तरीक़ा अलग हो सकता है; उदाहरण के लिए बिहारी जब नायक-नायिका के मिलन का ज़िक्र करते हैं तो वह बोधा की कविताओं से सर्वथा भिन्न है।इसी तरह मतिराम की कविताओं में गृहस्थी में पगी जिस नायिका को हम देखते हैं वह दरबारी संस्कृति के ठीक विपरीत है। इस कालावधि में लिखी गयी कई कविताओं में 'नीति' संबंधी मूल्य की झलक भी हमें मिलती है। वृंद और ग्वाल जैसे कवि दरबारी मानसिकता के बीच नैतिक साहस का प्रमाण हैं। बिहारी के कुछ दोहों में भी जीवन को संचालित करने वाले नैतिक-मूल्यों को देखा जा सकता है।

- **आधुनिक हिंदी कवियों का मूल्य-बोध:**

आधुनिक काल के कवियों में मूल्यों के प्रति सचेतता प्रारम्भ से ही दिखाई पड़ती है। भारतेंदु युग के कवियों से लेकर समकालीन कवियों तक के मूल्य-बोध में विविधता के बावजूद कुछ शाश्वत मूल्य हैं जो प्रायः हर युग के कवियों की काव्य-रचनाओं का आधार रही हैं। काव्य-प्रयोजन की दृष्टि से आनंद की अनुभूति, देशभक्ति तथा लोकहित को भारतेंदु युग के कवियों ने सर्वाधिक महत्व दिया। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत दृष्टव्य है-

"यद्यपि भारतेंदु-काल में ही कविता की नई धारा में विषयगत विविधता देखी गयी। किन्तु इस नए रंग में सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति की वाणी का था। उसी से लगे हुए विषय लोकहित, समाज-सुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि थे। हास्य और विनोद के नए विषय भी इस काल में कविता को प्राप्त हुए।"[13]

द्विवेदीयुगीन कविता में जहाँ एक ओर मूल्य और प्रतिमान बदलते नज़र आते हैं वहीं इन मूल्यों के बदलाव की वजह से कविता में विषयगत व्यापकता और स्पष्टता भी देखने को मिलती है। यथा भारतेंदु की कविताओं में जहाँ देशभक्ति और राजभक्ति को लेकर भ्रम या सन्देह बना रहा वहीं द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी। रीतिकालीन काव्य-पद्धति का खंडन करने वाले आचार्य द्विवेदी ने हिंदी कविता को उपयोगिता से जोड़ा। उनका मानना था- "कविता लिखते समय कवि के सामने एक ऊँचा उद्देश्य अवश्य होना चाहिए। केवल कविता ही के लिए कविता करना एक तमाशा है।"[14]

यह हिंदी कविता में मूल्यों के निर्माण का वह दौर था जब रीतिकालीन पद्धति से मनोरंजक काव्य लिखने और चमत्कार उत्पन्न करने से हिंदी के मनीषियों ने साफ-साफ इंकार कर दिया। कविता को उद्देश्यपूर्ण बनाने तथा कवियों को विविध विषयों पर काव्य-लेखन के लिए प्रेरित करने हेतु आचार्य द्विवेदी ने यह उद्घोष कर डाला-

"कविता का विषय मनोरंजक और उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे-किनारे केलि-कौतूहल का अद्भुत-अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की अब कोई आवश्यकता है न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की ।"[15]रीतिकालीन कविता के प्रति विरोध की वृत्ति को देखते हुए ही शायद डॉ. कृष्ण लाल ने 1900-1916 ई. तक के समय की कविता को'सैद्धान्तिक स्वच्छन्दतावाद'(Theoretical Romanticism) का काल कहा। एक ऐसी कालावधि जिसमें "19वीं शती की कविता के संकुचित दृष्टिकोण के प्रति

असन्तोष और उसकी अतिशय नियम-बद्धता(Formalism) और साहित्यिक पाण्डित्य के प्रति विरोध था।"[16]

'संकुचित दृष्टिकोण' के प्रति यह असन्तोष और 'अतिशय साहित्यिक पाण्डित्य' के प्रति जो यह विरोध था, वह द्विवेदी युगीन कवियों के मूल्य-बोध के उस विशिष्ट पक्ष से हमारा सक्षात्कार कराता है जो उसे एक ओर पूर्ववर्ती काव्य से अलग करता है तो दूसरी ओर हिंदी साहित्य के परवर्ती काव्य-आंदोलनों की ज़रूरत को बतलाता है। यही कारण है कि यद्यपि परवर्ती काल के कविगण का मत कई मायनों में द्विवेदी युगीन कवियों से भिन्न है बावज़ूद उसके इसमें कोई दो मत नहीं कि द्विवेदी युग ने हिंदी काव्य को कुछ शाश्वत मूल्य दिए हैं जो अनवरत रूप से हिंदी काव्य की दशा एवं दिशा को निर्धारित करती रही है।

छायावादी कवियों नें स्वतंत्रता को एक महत्वपूर्ण जीवन-मूल्य और काव्य-मूल्य के रूप में स्वीकार किया। यही कारण है कि इन कवियों ने भाव तथा शिल्प दोनों ही स्तरों पर परम्परिक रूढ़ियों का विरोध कर नये काव्य प्रतिमानों को स्थापित किया। एक ओर जहाँ भाषा के स्तर पर मुक्त छंद के प्रयोग को बल मिला वहीं दूसरी ओर भाव के स्तर परइन कवियों ने सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों को अभिव्यक्त किया है। अगर निराला कहते हैं कि 'मैंने मैं शैली अपनाई' तो यह 'मैं शैली'महज काव्य-शिल्प न होकर उस आत्मीयता का बोधक है, जिसके कारण उन्हेंपत्थरतोड़ती महिला के हथौड़े की चोट में सितार का संगीत सुनाई पड़ता है। शोषित वर्ग के साथ कवि के मन का यह एकाकार निराला की मूल्य चेतना की गवाही है- "सजा सहज सितार, सुनी मैंने वह जो नहीं थी सुनी झंकार"[17]यह सिर्फ़ सहानुभूति में लिखी गयी पँक्तियाँ नहीं हैं। ऐसी पँक्तियाँ वंचित वर्ग और निराला की समानुभूति को भी दर्शाती हैं। ठीक इसी प्रकार जब हम सुमित्रानंदन पन्त की लेखनी पर नज़र डालते हैं तो इनकी कई कविताओं में प्रकृति का जो मानवीकरण देखने को

मिलता है और जिस रूप में प्रायः सभी छायावादी कवियों ने अपनी कविताओं में प्रकृति को बरता है वह प्रकृति के सन्दर्भ में इनके उदात्त मूल्य-चेतना को दर्शाता है।

ध्यातव्य है कि आधुनिक युग में प्रवेश के साथ ही कई प्राचीन मूल्य धराशायी हो गये थे। इस संसार का सर्वेसर्वा अब ईश्वर नहीं, मनुष्य था। आस्था का स्थान तर्क ने ले लिया। विज्ञान के विकास ने मानवोपरी सत्ता के वज़ूद को चुनौती दी। मानव की गरिमा पर नये तरीक़े से बहस शुरू हो गयी। धर्मवीर भारती अपनी पुस्तक 'मानव मूल्य और साहित्य' में लिखते हैं कि-

"ज्यों-ज्यों हम आधुनिक युग में प्रवेश करते गये त्यों-त्यों इस मानवोपरि सत्ता का अवमूल्यन होता गया। मनुष्य की गरिमा का नये स्तर पर उदय हुआ और माना जाने लगा कि मनुष्य अपने में स्वतः सार्थक और मूल्यवान है-वह आन्तरिक शक्तियों से संपन्न, चेतन-स्तर पर अपनी नियति के निर्माण के लिए स्वतः निर्णय लेनेवाला प्राणी है। सृष्टि के केंद्र में मनुष्य है। यह भावना बीच-बीच में मध्यकाल के साधकों या सन्तों में भी कभी-कभी उदित हुई थी, किन्तु आधुनिक युग से पहले यह कभी भी सर्वमान्य नहीं हो पायी थी।"[18]

हिंदी कविता के अध्ययन के पश्चात हम पाते हैं कि प्रगतिवाद तक आते-आते ईश्वर को मनुष्य ने रिप्लेस कर दिया। प्रगतिवादी कवियोंनेमनुष्य के यथार्थ को सर्वाधिक महत्त्व दिया। इन कवियों ने पूँजीवादी मानसिकता का खुलकर विरोध किया तथा शोषित एवं वंचित जनता की पीड़ा को अपनी कविताओं में स्थान दिया। मनुष्य को संवेदना युक्त बनाने वाले मूल्य इन कविताओं के केंद्र में हैं। प्रगतिवादी कवियों ने साहित्य को सामान्य-जन के कल्याण का सशक्त साधन माना इसलिए इनकी कविताओं में वे वर्ग प्रमुख स्थान पाते हैं जिन्हें गलाकाट पूँजीवादी प्रतिस्पर्द्धा ने हाशिये पर धकेल दिया है। ये कवि मात्र भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए कविता नहीं लिखते हैं। बकौल मुक्तिबोध- "सच तो यह है कि ऐसी योग्यता जिसमें महान प्रेरणा

न हो, जिसमें लोक कल्याण के लिए त्याग की भावना न हो, जिसमें जनजीवन की अंतर्धाराओं को देखने की दृष्टि न हो, ऐसी योग्यता निरर्थक है।"[19]

हिंदी कविता में प्रयोगवाद के जनक माने जाने वाले सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने भी लोक कल्याणकारी मूल्यों को महत्त्व दिया है परन्तु इसके साथ-साथ वे 'आज़ादी' को समस्त मानव-मूल्यों में सर्वाधिक महत्त्व देते हैं।सप्तक शृंखला की कविताओं पर जब हम नज़र डालते हैं तब एक संपादक के रूप में अज्ञेय की उस आत्म-संस्कृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता जिसमें दूसरों की स्वतंत्रता को ख़ासा महत्त्व दिया गया है।सप्तक शृंखला के अंतर्गत छपने वाली कविताएँ अपने गुण-धर्म में एक दूसरे से भिन्न हैं।इनमें जिन कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुई हैं उनकी दृष्टियाँ और प्राथमिकताएँ अलग-अलग हैं। इनके जीवन-मूल्य अलग हैं और एक संपादक के रूप में यह अज्ञेय की विशिष्टता है कि वे प्रयोग करने, असहमत होने और भिन्न प्रकार से सोचने की आज़ादी में कभी बाधक नहीं बने।

हिंदी कविता के प्रायः सभी दौर में मानव-जीवन को संपोषित करने वाले मूल्यों को कविता की शक्ल में अभिव्यक्त होते हुए हम पाते हैं। नयी कविता के प्रतिष्ठित कवि धूमिल ने आदमी हो सकने की तमीज को कविता माना है। यह इतिहास का एक ऐसा दौर था जब व्यक्ति के आदर्श और सपने उसकी आँखों के सामने टूट रहे थे। आज़ादी से उसका मोहभंग हो गया था। राजनीतिक पार्टियाँ जनता के सरोकारों से मुँह मोड़कर महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने में लगी थीं। ऐसे में राजनीतिक व्यवस्था को बेपर्दा करना कवि का धर्म था, जिसे धूमिल जैसे कवियों ने बखूबी निभाया।

आज की हिंदी कविता में हाशिये के विमर्शों और वैचारिक बहसों का जो स्वरूप हम देख रहे हैं उसकी पृष्ठभूमि में वे मानवीय-मूल्य हैं जो एक इंसान को दूसरे इंसान के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। यह तयशुदा बात है कि अगर एक इंसान दूसरे इंसान के प्रति बर्बर रवैया

अपनाता है तो प्रगति के हमारे तमाम दावे खोखले साबित होंगे। वास्तविक प्रगति मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करने में है इसलिए साहित्य का प्रयास इसी ओर होना चाहिए। बकौल धर्मवीर भारती-"सृजन, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में प्रगति की धारणा अन्ततोगत्वा आन्तरिक ही हो सकती है। प्रगति (नियति का क्रमिक साक्षात्कार) हमसे निरपेक्ष नहीं है। वह हमसे आबद्ध है उसके निर्णायक तत्व हम ही हैं। इसलिए प्रगति के प्रसंग में, समानता की स्थापना और मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा 'अन्योन्याश्रित' हैं, अविच्छिन्न मूल्य हैं।"[20]

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी कविता मूल्यों के प्रति प्रारंभ से ही सचेत दिखती है। यह दीगर बात है कि इन मूल्यों का स्वर और स्वरूप समय के साथ बदलता रहा है।कुछ सार्वभौमिक मूल्यों का पालन प्रायः सभी कवियों ने किया है तो कुछ कवियों ने नवीन मूल्यों का सृजन किया है। पारंपरिक मूल्यों को नकारने का साहस और नवीन-मूल्यों के सृजन का विवेक एक दायित्वपूर्ण कार्य है जिसका संबंध मानव-जीवन की सार्थकता से है। हिंदी कवियों ने इस दायित्व का निर्वहन कर मनुष्य के जीवन में साहित्य के महत्त्व को स्थापित करने का कार्य किया है।आज जब व्यावसायिकता की होड़ में मनुष्य ने अपनी मूल्य-चेतना को बाज़ार के हवाले कर दिया है तबइस कठिन वक्त में कवि और कविता की ज़िम्मेदारी और बढ़ जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. R.K. Mukherjee, The Social Activities of Values p. 77
2. डॉ. जगदीश गुप्त, नयी कविता: स्वरूप एवं समस्याएँ, पृष्ठ-11
3. बाल्मीकि रामायण, बालकांड-5/4
4. डॉ. सत्यदेव चौधरी, भारतीय काव्यशास्त्र, पृष्ठ-22
5. मम्मट, काव्य प्रकाश, पृष्ठ-10
6. डॉ. सत्यदेव चौधरी, भारतीय काव्यशास्त्र, पृष्ठ-28
7. वही, पृष्ठ-28
8. वही, पृष्ठ-29
9. (Ed) Gutenberg, Horace: On Art of Poetry, page-573
10. (Ed) R.H. Super, Mathhew Arnold: English Literature And Irish Politics, page-165
11. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, पृष्ठ-72
12. डॉ. सत्यदेव चौधरी, भारतीय काव्यशास्त्र, पृष्ठ-18
13. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी सहित्य का इतिहास, पृष्ठ-562
14. (सं.) भरत यायावर, सहित्य-विचार: आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-18
15. अर्पणा सारस्वत, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्यधारा की मूल्य चेतना, पृष्ठ-22
16. धीरेन्द्र वर्मा, आधुनिक हिन्दी सहित्य का विकास, पृष्ठ-26
17. (सं) रामविलास शर्मा, रागविराग, पृष्ठ-160
18. डॉ. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, पृष्ठ-72
19. मुक्तिबोध, नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ-79
20. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, पृष्ठ-25

4.2 कुँवर नारायण की कविताओं में व्यक्त विविध मूल्य

कुँवर नारायण की कविताओं में मूल्य-चेतना का विस्तृत रूप हमें देखने को मिलता है। ये मूल्य उनकी कविताओं को सार्वजनीन एवं सार्वकालिक बनाते हैं। कुँवर जी साहित्य और कविता की महत्ता उन जीवन-मूल्यों को पोषित करने में मानते हैं जो मनुष्य को मनुष्यता से संपन्न बनाते हैं। बकौल कुँवर नारायण- "साहित्य-चिंता के मूल में रहते हैं वे जीवन-मूल्य जो मनुष्य के हित में हों-जो उसकी रक्षा कर सकें उसकी अपनी ज़्यादतियों से, और दूसरों की ज़्यादतियों से भी।"[1]यह बात सिर्फ़ एक कवि जानता है कि व्यक्ति अपनी ज़्यादतियों का शिकार भी हो सकता है! किसी मनुष्य का बर्बर हो जाना सिर्फ़ दूसरे मनुष्य के लिए घातक नहीं है बल्कि उसके स्वयं के आत्मिक विकास केलिए भी ख़तरनाक है। इसलिए मानवीय-मूल्यों की रक्षा को मनुष्य की केन्द्रीय चिंता का विषय होना चाहिए।चूँकि कुँवर जी की कविताओं का फ़लक बहुत विस्तृत है इसलिए उनमें मूल्यों के विविध रूप हमें देखने को मिलते हैं। उनकी लेखनी की यह ख़ासियत है कि उनकी कविताएँ व्यक्तिनिष्ठ नहीं हुआ करती हैं। अगर वे अपने जीवन के अनुभवों को भी व्यक्त करते हैं तो इस रूप में करते हैं कि उसमें पाठक का जीवन अनुभव भी शामिल हो जाता है। व्यष्टि से समष्टि की यह यात्रा इसलिए भी संभव हो सकी है क्योंकि उनकी कविताएँ सार्वभौम मूल्यों के अनुपालन के लिए प्रतिबद्ध रही हैं।ध्यातव्य है कि मानव-जीवन कुँवर जी की कविताओं का केन्द्रीय कथ्य है और मूल्यों के बगैर मनुष्य के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। मूल्य हमारे समाज और संस्कृति को सद्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। ये मूल्य ही हैं जो कभी कसौटी तो कभी नियामक बन मनुष्य के लिए पाथेय का कार्य करते हैं। मूल्यों की सम्पन्नता की वजह से कुँवर नारायण की कविताएँ अपने समय और समाज के लिए एक ज़रूरी दस्तावेज़ बन गयी हैं। इस उपअध्याय के अंतर्गत कुँवर नारायण की कविताओं में निहित मूल्यों को ढूँढने का प्रयत्न किया गया है।

कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ता हुआ पाठक स्वस्थ जीवन-मूल्यों से परिचित हो रहा होता है। कुँवर जी अपनी कविताओं में बार-बार उस द्वंद्व से गुजरते हैं जिसमें एक तरफ़ सुलभ जीवन का आसान तरीका है, दूसरी तरफ़ कठिनाइयाँ हैं, परेशानियाँ हैं, पर वहीं जीवन की सार्थकता को सिद्ध करने का उपक्रम भी है। कुँवर जी ताउम्र दूसरे मार्ग पर चलने के लिए प्रतिबद्ध रहे हैं और उनकी कविताएँ भी इसी मार्ग को प्रशस्त करती हैं।'आत्मजयी' (१९५६) कुँवर नारायण का एक महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह है। इसकी भूमिका में ही कुँवर जी लिखते हैं- "नचिकेता की चिन्ता भी अमर जीवन की चिन्ता है। 'अमर जीवन' से तात्पर्य उन अमर जीवन-मूल्यों से है जो व्यक्ति-जगत का अतिक्रमण करके सार्वकालिक और सार्वजनीन बन जाते हैं। नचिकेता इस असाधारण खोज के परिणामों के लिए तैयार है। वह अपने आपको इस धोखे में नहीं रखता कि सत्य से उसे सामान्य अर्थों में सुख ही मिलेगा; लेकिन उसके बिना उसे किसी भी अर्थ में संतोष मिल सकेगा, इस बारे में उसे घातक संदेह है। यम से- साक्षात मृत्यु तक से-उसका हठ एक दृढ़ जिज्ञासु का हठ है, जिसे कोई भी सांसारिक वरदान डिगा नहीं पाता।"[2]

कुँवर नारायण अपनी कविताओं में बार-बार इस व्यक्ति-जगत का अतिक्रमण करते हैं। उनकी कविताओं में सत्य के प्रति अन्वेषण का भाव है, सुख के प्रति आग्रह का भाव नहीं। ऐसा संभवतः इसलिए भी है क्योंकि कवि इस सत्य से परिचित हैं कि इन्द्रिय सुख जीवन की संभावनाओं को सीमित कर देता है। आज उपभोक्तावादी जीवनशैली की शोर में जीवन की सार्थकता को ढूँढने के प्रयास को जिस प्रकार निरर्थक मान लिया गया है ऐसे कठिन दौर में कुँवर जी की कविताएँ जीवन की सार्थकता के सवाल को स्वर देती हैं।कुँवर जी की एक कविता का शीर्षक है 'दहलीज़ के परे'। यह कविता 'हाशिये का गवाह' नामक काव्य-संग्रह में संग्रहित है। कवि लिखते हैं-

"कभी सोचा था

अमरत्व के अर्थ को

फिर कभी सोचूँगा

बिल्कुल नयी तरह

जब वक़्त आया

उसके सारे संदर्भ पौराणिक हो चुके थे।"[3]

अमरत्व के अर्थ पर विचार करना दरअसल उन जीवन-मूल्यों पर विचार करना है जो किसी के व्यक्तित्व को अमरता प्रदान करते हैं। उपभोक्तावादी जीवनशैली हमें लगातार उन जीवन-मूल्यों से दूर ले जा रही है इसलिए कवि की मुश्किलें बढ़ गयी हैं।ऐसे दौर में कुँवर नारायण उन जीवन-पद्धतियों पर बार-बार विचार करते हैं जिसे अप्रासंगिक मान लिया गया है। वे अपनी कविता के माध्यम से उन शब्दों और विचार-सरणियों की ओर वापस लौटते हैं जो मनुष्यता की आधारशिला हैं। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए उन जीवन-मूल्यों पर पुनर्विचार का अवसर मिलता है जिसे ज़िन्दगी की आपाधापी में प्रायः हम विस्मृत कर देते हैं। कुँवर नारायण की कई कविताओं में हम पाते हैं कि कवि अपनी स्मृतियों, अपने पिछले संस्कारों को आज के जीवन में पुनर्वास देता है, ताकि आज का जीवन उन उदात्त मूल्यों से संवर्द्धित हो सके जिसे महान-महान आत्माओं ने अपने शील, तप और संघर्षों से कमाया था। नचिकेता जब अपने पिता से कहता है कि "आह, तुम नहीं समझते पिता, नहीं समझना चाह रहे/ कि एक-एक शील को पाने के लिए/ कितनी महान आत्माओं ने कितना कष्ट सहा है..."[4] तो यह सिर्फ़ नचिकेता की अपने पिता से शिकायत नहीं है, यह कवि की उस समूची पीढ़ी से शिकायत हैजिसने महत्वाकांक्षाओं की होड़ में परंपरा से प्राप्त मूल्यों की थाती को विस्मृत कर दिया।आज जब अन्तरात्मा जैसे शब्द निःशक्त

होते जा रहे हैंतो ऐसे दौर में कवि यह सुनिश्चित करते हैं कि मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा प्रत्येक क्षण हो सके। उनकी कविताओं में उन उदात्त जीवन-मूल्यों को हम प्रतिष्ठित होते हुए पाते हैं जिससे मनुष्य का जीवन सार्थकता को प्राप्त करता है।चूँकि कुँवर नारायण बहुज्ञ कवि हैं और केवल साहित्य ही नहीं इतिहास और संस्कृति के भी अध्येता हैं इसलिए उनकी नज़र सिर्फ़ वर्तमान पर हीनहीं रहती है। वे इतिहास को एक सीख की तरह लेते हैं जिससे वर्तमान को संवारा जा सके। कुँवर नारायण का चिंतन किसी एक देश के इतिहास, संस्कृति और साहित्य से निर्मित नहीं है बल्कि इसके निर्माण के पीछे उत्तरदायी कारणों में विविध संस्कृतियाँ हैं, विभिन्न देशों की साहित्य और कलाएँ हैं। आज का मनुष्य जिस निरर्थक जीवन की ओर अग्रसर है वह केवल राजनीतिक या आर्थिक संकट, पूर्व या पश्चिम का संकट मात्र नहीं है बल्कि उससे संसार का हर व्यक्ति प्रभावित है और वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है।ग़ौरतलब है कि पिछली शताब्दी में ही यूरोपीय-साहित्य में 'अन्तरात्मा' जैसे शब्द अपनी महत्ता खोने लगे थे। यह प्रक्रिया किस प्रकार घटित हुई उसका एक लंबा इतिहास है।नीत्शे जैसे विचारकों ने मूल्यों के निर्धारण का जो तरीक़ा अपनाया उसमें मानवीय गौरव को प्रतिष्ठित करने वाली अन्तरात्मा को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया था। अन्तरात्मा कोनिरर्थक और नैतिक मूल्यों कोव्यर्थ मानने वालों में नीत्शे अकेले नहीं थे। उनसे कई वर्ष पूर्व मैकियावेली ने शासक के विषय में कहा था "शासक को अपने किये हुए वायदे नहीं निभाने चाहिए-यदि स्थितियाँ बदल जाएँ। उसे दिखना चाहिए करुणायुक्त, स्नेहशील, क्षमाशील...होना चाहिए कठोर, निर्मम, आतंककारी। उसे मनुष्य के अन्दर के पशु को पहचानना चाहिए और उसपर नियन्त्रण कर उसे उन्हें हाँकना चाहिए।"[5]चाहे मैकियावेली हों या नीत्शे दोनों व्यक्ति मात्र के उदाहरण नहीं हैं वे उस वैचारिक पद्धति का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें महत्वाकांक्षाओं की प्राप्ति को सर्वस्व माना गया है और अन्तरात्मा को निरर्थकमान लिया गया है। इस दुनिया ने हिटलर जैसे सारहीन व्यक्ति को एक बड़ा अधिनायक बनते देखा है। जब तक मनुष्य अन्तरात्मा रहित होकर अमानुषिक जीवन-दर्शन से

ग्रस्त न हो गया हो क्या ये संभव हो पाता? कदापि नहीं! यह तभी संभव है जब मनुष्य के भीतर की वह अन्तरात्मा शून्य हो जाए जो निरपेक्ष भाव से संसार का मूल्यांकन करती है और बहुधा स्वयं का भी मूल्यांकन करती है। अब जहाँ तक साहित्य का सवाल है उसका यह दायित्व है कि वह व्यक्ति को अमानुषिक होने से बचाए। साहित्य की ज़िम्मेदारी है उस संगति को चुनौती देना जो मानव-विरोधी विचार को मनुष्य का सहज स्वभाव मान लेता है। सृजन की प्रक्रिया में वर्तमान का बहुत महत्त्व होता है। अगर साहित्यकार या कवि यह सोच ले कि मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा भविष्य में कोई करेगा तो वह भविष्य कभी नहीं आएगा। यह कार्य वर्तमान से प्रारंभ करना ज़रूरी है इस क्रम में पहली प्राथमिकता अन्तरात्मा के पुनर्स्थापन को देना होगा। जीवन-मूल्यों का संबंध इस अन्तरात्मा से घनिष्ठ रूप में जुड़ा हुआ है।कुँवर नारायण की कविताओं में बार-बार अन्तरात्मा और विवेक की संगति का प्रयास दिखता है।उनकी कविताएँ प्रत्येक क्षण मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा के दायित्व का निर्वहन करती हैं।जीवन को उदात्त बनाने वाले मूल्यों को कुँवर जी की कविताओं में आसानी से लक्षित किया जा सकता है। मनुष्य के हितकारी जीवन-मूल्य ही उनकी कविताओं के मूल में हैं। आज अगर कुँवर नारायण की कविताओं का अनुवाद विश्व की कई भाषाओं में किया जा रहा है तो उसकी एक बड़ी वजह उनकी कविताओं में उन मूल्यों का होना है जिसमें विश्व-मानव की चिंता है। ये मूल्य कुँवर जी की कविताओं को न सिर्फ़ विश्वजनीन बनाते हैं बल्कि उनकी कविताओं को काल और स्थान की भौतिक अवधारणा से पृथक कर उसे कालजयी बनाते हैं।कुँवर नारायण समय, स्थान तथा घटना को निरंतरता में देखते हैं। इसलिए इनकी कविता में निहित मूल्य सिर्फ़ वर्तमान से संबंधित नहीं हैं। इन मूल्यों का मानव-अतीत से भी संबंध है और यह मानव-भविष्य की बुनियाद भी है। चाहे सांस्कृतिक मूल्य हों या सामाजिक मूल्य, चाहे राजनीतिक मूल्य हों या आध्यात्मिक मूल्य कुँवर जी की कविताओं में इनके उदात्त स्वरूप को अभिव्यक्त होते हुए हम पाते हैं।

कुँवर जी की कविताओं में भारतीय संस्कृति की व्यापकता और विस्तार को महसूसा जा सकता है। उन्होंने भारतीय इतिहास और संस्कृति में बाहरी प्रभावों को कभी इस तरह सेनहीं लिया कि मानो उन्हें बिल्कुल अलग करके किसी 'विशुद्ध' भारतीय अतीत या संस्कृति की कल्पना की जा सकती है। कुँवर जी लिखते हैं-"ईरानी, ग्रीक, मुस्लिम-अंग्रेजी इन सभी प्रभावों ने अपनी तरह भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया और उससे प्रभावित हुए। इन प्रभावों को आरोपित न मानकर 'म्यूटेशनल' मानना ज्यादा ठीक होगा। इससे भारतीयता की पहचान खोती नहीं और समृद्ध होती है।"[6] भारतीय संस्कृति को इस व्यापकता में देखने का परिणाम यह हुआ कि उनकी कविताएँ उस भोंदू किस्म की राष्ट्रीयता से बची रहीं जिसमें अपनी राष्ट्रभक्ति साबित करने के लिए किसी दूसरे राष्ट्र को नीचा दिखाना पड़े।कुँवर जी महत्वाकांक्षी व्यक्ति की नज़र से दुनिया को नहीं देखते हैं बल्कि कविता की ऊँचाई से दुनिया को देखते हैं। कविता की ऊँचाई से दुनिया को देखने का यह उपक्रम जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उठने का उपक्रम भी है।

कुँवर नारायण की कई कविताओं में सामजिक जीवन से संबंधित मूल्यों की अभिव्यक्ति को लक्षित किया जा सकता है। अपने आस-पास के समाज को कुँवर नारायण बहुत ग़ौर से देखते हैं। चाहे सामाजिक आस्था और विश्वास हो या समाज की रीति-नीति, समाज के दो वर्गों के बीच का द्वंद्व हो या उस द्वंद्व से उपजी विसंगतियाँ,कुँवर नारायण का कवि हृदयहर उस जगह अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है जहाँ संवेदनशील मनुष्य को होना चाहिए।जिस मूल्यहीन, सारहीन, अर्थहीन जीवन का यह समाज आदि हो चुका है, कवि उसमें बदलाव का आग्रही है-

"ऊँची होती जा रहीं हमारे बीच की दीवारें

बाज़ारों में बदल गयी है दुनिया

जिनमें बिक जाते हैं देश के देश

कबाड़खानों में बदलते जा रहे हैं

पृथ्वी के हरे-भरे प्रदेश

जिनमें पुरज़ा-पुरज़ा हो जाए आदमी

ऐसे रोज़गारों को बदलना चाहिए

विज्ञापनों से ढक गई है ज़िन्दगी

अब ख़रीददारों को बदलना चाहिए।"[7]

मनुष्य-मनुष्य के बीच बढ़ती दूरियाँ मानवीय अस्तित्व के लिए कितनी घातक हैं इसका कवि को भान है। कवि जानते हैं कि जिन इमारतों की श्रृंखलाओं पर आज का मनुष्य इतरा रहा है वह पृथ्वी के हरे-भरे प्रदेश को उजाड़ कर बसाया गया है। ध्यातव्य है कि मनुष्य के जीवन के लिए वृक्षों का महत्त्व इन इमारतों से कई गुणा ज़्यादा है।अभी हाल ही में कोरोना की त्रासदी को विश्व ने झेला। न जाने और कितनी त्रासदियाँ चाहिए इस विश्व को यह समझने के लिए कि विकास के जिस मॉडल को बहुतायत आबादी ने अपना लिया है, वह आत्मघाती है। वृक्ष की कीमत पर खड़ी हो रही ईमारतें दुनिया को कबाड़खाने में तब्दील कर रहीहैं।एक कवि की हैसियत से कुँवर जी उस जीवन-पद्धति को भी बदलना चाह रहे हैं जिसमें आदमी की ज़िन्दगी के मायने बाज़ार के विज्ञापनों से ढक जाते हैं और व्यक्ति रोजगार को ही जीवन का एकमात्र सत्य मान लेता है।

कुँवर नारायण की कविताओं में उन जीवन-मूल्यों का संधान है जिसे बाज़ार और विज्ञापनों के लुभावने प्रलोभन ने हमसे छीन लिया है। उनकी कविताओं में जिस जीवन-सत्य की बात की जाती है उसका मूल भी सही जीवन-मूल्यों की पहचान करा सकने वाली शक्ति से है।

बकौल कुँवर नारायण- "जब मैं जीवन-सत्य की बात करता हूँ तो मेरा मतलब कविता के पीछे काम करनेवाली उस सतर्क-बुद्धि संवेदनशीलता से होता है जो ज़िन्दगी को तीव्रतम एहसासों और विवेक के स्तरों पर एक साथ जीने में सक्षम हो और सही जीवनमूल्यों की पहचान करा सके।"[8]

कविता के पीछे काम करने वाली जिस सतर्क-बुद्धि और संवेदनशीलता की कुँवर जी बात कर रहे हैं उन दोनों के अभाव को आज के मनुष्य में महसूसा जा सकता है। ध्यातव्य है कि विवेक और संवेदना रहित मानवीय व्यक्तित्व यंत्रवत है। कुँवर जी की कविताएँ मानवीय व्यक्तित्व के इस यंत्रीकरण को रोकना चाहती हैं।बाज़ार मनुष्य के जिस संवेदनात्मक और विवेकशील स्वरूप पर लगातार हमले कर रहा है कुँवर जी उस हमले में ध्वस्त मानवीय व्यक्तित्व के मलबे को समेटकर उससे कुछ नया निर्मित करना चाहते हैं। ये कविताएँ हमें स्वस्थ जीवन-मूल्यों की ओर हौले-हौले ले जाती हैं और उदात्त जीवनदृष्टि को अपनाने के लिए प्रेरित करती हैं। कविता के विषय में कुँवर नारायण लिखते हैं- "मुख्य बात है कविता हमें स्वस्थ जीवन-मूल्यों के प्रति किस तरह और कितना संवेदनशील बना पाती है और हमारी जीवनदृष्टि को कितना उदार और विवेकपूर्ण।"[9]

सत्य, अहिंसा और प्रेम जैसे मूल्य कुँवर नारायण की कविताओंके केन्द्रीय कथ्य हैं। कुँवर जी की कविताओं का पाठक अंतर्दृष्टि की विरल शक्ति को पहचानने के लिए प्रेरित होता है।मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण के लिए अंतर्दृष्टि की शक्ति को पहचानना अनिवार्य है। इसके बगैर आत्मिक-विकास संभव नहीं है। कुँवर जी अपनी कविताओं के माध्यम से पाठक में सत्य, अहिंसा और प्रेम जैसे मूल्यों को पुष्पित और पल्लवित करते हैं। सत्य को कुँवर जी जीवन का आधार मानते हैं। उनको यकीन है कि आदमकद विचारों को यदि ज़िंदा रखना है तो हमें विपरीत परिस्थितियों में भी सत्य का दामन पकड़े रहना होगा। सत्य एक मूल्य मात्र नहीं है, वह जीवन-

शक्ति है, जिसके अभाव में आदमी को आत्मसाक्षात्कार नहीं हो पाता।कुँवर नारायण व्यक्ति की सत्ता को पूरी तरह गौरवान्वित देखना चाहते हैं इसलिए उनकी कविताएँ मनुष्य को दैनिक व्यवहार में सत्य को बरतने की प्रेरणा देती हैं। कवि जानते हैं कि चाहे उस सत्य को बरतने का परिणाम तात्कालिक रूप से हमारे विपरीत ही क्यों न जाए परन्तु मानवीय जीवन की गरिमा की रक्षा के लिए यह आवश्यक है। कवि इस सत्य से परिचित हैं कि मनुष्य के शील को आकार देने में कई पीढ़ियाँ ख़प गयीं। मनुष्य अगर सत्य का दामन नहीं छोड़ता है, अपने नैतिक साहस से समझौता नहीं करता है, मनुष्यत्व से विचलित नहीं होता है तो एक पल को वह ईश्वर से भी स्पष्टीकरण माँग सकता है-

‘‘ग़लत से ग़लत वक्त में भी

सही से सही बात कही जा सकती है।

हम थोड़ी देर के लिए स्थगित कर सकते हैं युद्ध,

महत्त्व दे सकते हैं अपने भयभीत होने को,

स्वीकार कर सकते हैं

अपनी बदहवासी

एक बार, कम से कम एक बार तो

काँप सकते हैं हमारे हाथ,

हम चीख़ सकते हैं कि ‘नहीं...

ये सब पराये नहीं मेरे हैं,

मैं इन्हें नहीं मार सकता,

मैं युद्ध नहीं करूँगा...'

ऐसी विषम घड़ी में हमारे अंतःकरण

कम-से-कम एक बार तो

बना सकते हैं ईश्वर को साक्षी-

माँग सकते हैं उससे भी स्पष्टीकरण..."[10]

रोज़ की प्रतिस्पर्द्धा को जीतने के चक्कर में जीवन-सत्य को नकार देने वाली पीढ़ी कुँवर नारायण के सामने है। एक ऐसी पीढ़ी जो क्षणिक लाभ के लिए सही बात कहने से हिचकती है।उसने अंतःकरण की आवाज़ को सुनना बंद कर दिया है। भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के शोर में उन आवाज़ों को मनुष्य ने विस्मृत कर दिया है जिसका संबंध मनुष्य को संवेदनशील बनाने से है। कुँवर जी उन आवाज़ों की कीमत जानते हैं।वे जानते हैं कि आज की पीढ़ी जिन स्थायी जीवन-मूल्यों को यथार्थ मानने तक से कतराती है वे कभी पुराने नहीं पड़ने वाले,इसलिए वे उन्हें अपनी कविताओं में स्वर देते हैं। वे जीवन-मूल्य जिन्हें कई बार अमूर्त मानकर हम यह विश्वास कर बैठते हैं कि वास्तविक जीवन में इन्हें अपनाया नहीं जा सकता जबकि सत्य यह है कि हम जटिल स्थितियों से जूझने से कतराते हैं इसलिए आसान विकल्पों का चयन कर लेते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में हम यह भूल जाते हैं किये आसान विकल्प ही सही विकल्प हों ये ज़रूरी नहीं है। अपने आस-पास हमें ऐसे लोग बहुतायत मिल जाएँगे जो भ्रष्टाचार और बेईमानी के लिए परिस्थितियों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं दरअसल उनका आत्मबल इतना कमज़ोर हो चुका होता है कि वे सच्चाइयों का सामना नहीं कर सकते। ऐसी मानसिकता के लिए कुँवर जी दो टूक बोलते हैं-

“वह ‘मजबूर’ है, मक्कार नहीं – यह अपने आप में एक मक्कार तर्क है, और कहीं-न-कहीं उन सच्चाइयों को अपमानित करता है, जो मनुष्य के चरित्र, आत्मबल और सम्मान की नैतिक नींव बनाती है। वह साहित्य जो इन क्षेत्रों की आवाज़ है, अगर महत्त्व नहीं पाता तो इसका अर्थ है कि हमारा उग्र समकालीनताबोध भी जाने-अनजाने उस अपवित्र पाखण्ड का तरफ़दार है, जो इस तर्क को स्वीकार करता है कि नैतिकता, अनैतिकता का सवाल आत्मिक नहीं नितान्त मौकापरस्त है, व्यावहारिक है।”[11]

यह बेबाकी अर्जित करनी पड़ती है। कुँवर नारायण निडरता से अपनी बात रख पाते हैं क्योंकि उनकी कविता और उनके स्वभाव में फ़र्क़ नहीं है। नैतिक साहस और आत्मबल की जो अभिव्यक्ति हम उनकी कविताओं में पाते हैं वह उनके व्यक्तित्व में भी परिलक्षित होता है। कुँवर नारायण की कविताएँ जिन जीवन-मूल्यों के अनुपालन पर जोर देती हैंदैनिक जीवन व्यवहार में उसे अपनाने के लिए अस्वीकार के साहस का होना भी ज़रूरी है। शहरीकरण और औद्योगिकीकरण नेजिन मूल्यों को समाज पर थोपा है उसमें कई अवांछनीय भी हैं परन्तु भौतिकता काआदी हो चुका समाज उसे अस्वीकार करने का साहस नहीं जुटा पाता है।कुँवर नारायण की कविताएँ समाज की आत्मिक-आध्यात्मिक चेतना को झिंझोड़कर उसमें उन मूल्यों को अस्वीकृत करने का साहस भरती हैं जो मनुष्य के लिए भले ही तात्कालिक रूप में लाभप्रद दिखें परन्तु दीर्घकालिक रूप में अहितकर होतेहैं।कुँवर जी निडरता के साथ समाज की मान्यताओं को चुनौती देते हैं और समाज की सामूहिक चेतना पर पड़े धूल को साफ़ करते हैं। कुँवर नारायण की निडरता के विषय में लीलाधर मंडलोई का मत दृष्टव्य है-

“कुँवर जी अपने विचारों में निडर सादगी के संवाहक हैं। वे सच को शब्दों के झूठ से ढँकने का विरोध करते हैं। वे बिना लाग लपेट के कविता में बयान देते हुए लग सकते हैं, लेकिन वे

चश्मदीद गवाह के रूप में ही अधिक देखे जाते हैं-काल के साथ लेकिन काल के अतिक्रमण में"[12]

सवाल उठता है कि काल का अतिक्रमण करना एक कवि के लिए कब ज़रूरी हो जाता है? इसका ज़वाब तलाशने के लिए उस दौर पर नज़र डालना पड़ेगा जब कवि कविता रच रहे थे। कुँवर नारायण का रचना कर्म पिछली शताब्दी के 60 वें दशक से प्रारम्भ होकर 50-60 सालों तक चलता है। देश के राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से देखें तो यह तेजी से बदलाव का क्षण है। आज़ादी के बाद जिस तरह समाज के सामूहिक स्वप्न पर सत्ता और शहरीकरण ने चोट किए और बाद के वर्षों में पूँजीवाद ने सत्ता के साथ गठजोड़ कर जिस प्रकार मनुष्य की सामूहिक चेतना पर प्रहार किया उसका परिणाम हम समाज में मूल्यों के पतन के रूप में देखते हैं। आज यह समाज अपनी चेतना की विस्मृति के और संवेदनशून्यता की उस स्थिति पर पहुँच चुका है कि सत्ता और बाज़ार उसके मूल्यों का निर्धारक बन चुके हैं। सत्ता और पूँजी के इस गठजोड़ से भिड़ंत करने की न उसमें तमीज है न साहस। कुँवर नारायण की कविताएँ समाज को सामूहिक स्वप्न दिखाती हैं। इस स्वप्न में व्यक्तिगत जैसा कुछ भी नहीं है, जो भी है सामूहिक है। संभवतः इसी सामूहिक स्वप्न को गीत चतुर्वेदी 'कलेक्टिव मेटाकॉन्शस को संबोधित एक मानसिक मनोवैज्ञानिक मोर्चा' मानते हैं- "एक कमज़ोर नैतिक बल वाले इस समाज में, उपनिवेशों और आक्रांताओं से टूटे हुए मनोबल वाले इस इतिहास में, आत्मबल जुटाने की कोशिश में हाँफ रहे इस भूगोल में, एक कवि जब अपनी कविताओं के ज़रिये यह भूमिका अदा करता है, तो दरअसल वह कितनी बड़ी भूमिका है। इसलिए कुँवर नारायण की कविताएँ कलेक्टिव मेटाकॉन्शस को संबोधित एक मानसिक मनोवैज्ञानिक मोर्चा हैं।"[13]ये कविताएँ हमारे सौन्दर्यबोध को उस ओर मोड़ने का प्रयत्न करती हैं जहाँ से हमारी कलात्मक, सांस्कृतिक और मानवीय अनुभूतियों को फलने-फूलने के लिए विस्तृत क्षेत्र मिले। विगत दशकों में हम अपनी कलात्मक, सांस्कृतिक अनुभूतियों को लेकर निष्ठुर हो गए हैं। कला और संस्कृति के प्रति इस विमुखता ने

हमारे मूल्य-बोध को गहरे रूप में प्रभावित किया है।आज उथली व्यावसायिकता कला को जिस रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत कर रही है उसने कला को मानवीयता के वृहत्तर सन्दर्भों से जोड़े रखना मुश्किल बना दिया है। आज कला के नाम पर घटिया से घटिया सामग्री को हमारे समक्ष परोसा जा रहा है। बाज़ार कलाओं का नियामक हो चुका है और कला को परखने के सच्चे तरीकों से परहेज़ कर लिया गया है। जो बिक रहा है उसे श्रेष्ठ मान लेने की होड़ मची है। इस अंधी प्रतिस्पर्द्धा का हिस्सा बन कलाकार ने अपनी आत्मालोचना के साहस को गँवा दिया है। जब हम कलाओं के सन्दर्भ में कुँवर नारायण के मूल्यों पर नज़र डालते हैं तो पाते हैं कि उन्होंने ईमानदारी को इस क्षेत्र में भी एक महत्वपूर्ण मूल्य के रूप में स्वीकार किया है। ध्यातव्य है कि जो व्यक्ति अपनी कला के प्रति ईमानदार नहीं होगा वह अपनी आत्मालोचना का साहस जुटा पाने में भी असमर्थ होगा। कुँवर नारायण लिखते हैं- "निर्भीक आत्मालोचना के बिना अच्छा कलाकार तो क्या, अच्छा इंसान भी बन पाना मुश्किल है।"[14]

कलाओं के सन्दर्भ में कुँवर नारायण की मूल्य-चेतना को समझने के लिए हर तरह की कट्टरता को त्याग कर उदात्त दृष्टि से विचार करना चाहिए। व्यावसायिकता की कसौटी पर कला की सफलता-असफलता का निर्णय करने वाले विद्वानों के लिए कुँवर नारायण की दृष्टि वायवीय हो सकती है परन्तु जो कला के वास्तविक मर्म को समझने वाले होंगे वे इस दृष्टि की महत्ता को नहीं नकार सकते हैं। कुँवर नारायण ने कई ऐसी कविताएँ लिखी हैं जिनमें विभिन्न कलाओं के सन्दर्भ में उनके मूल्यों का पता चलता है। इसके अतिरिक्त उनकी भेंट-वार्ताओं, टिप्पणियों आदि के माध्यम से कवि की दृष्टि और प्राथमिकताओं से अवगत हुआ जा सकता है। इस दृष्टिकोण से सिनेमा पर केन्द्रित उनकी किताब 'लेखक का सिनेमा' एक महत्वपूर्ण कृति है। इसकी शुरूआत ही कुँवर जी ये लिखते हुए करते हैं कि "बढ़ती हुई व्यावसायिकता और स्पर्द्धा से जो अभी भी बचे हुए हैं उनको समर्पित"[15]आज व्यावसायिकता की वजह से उपजी प्रतिस्पर्द्धा ने एक कला को दूसरी कला का प्रतिद्वंद्वी बना दिया है। जबकि श्रेष्ठ कलाओं में प्रतिद्वंद्विता का भाव या

अंतर्विरोध नहीं होता है। उनमें समन्वय होता है। उनमें सहअस्तित्व होता है। बाहर-बाहर वे अलग से दिखने के बावजूद आंतरिक रूप से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। कुँवर नारायण इस जुड़ाव के साकारात्मक पक्ष कोग्रहण करते हुए उसका प्रयोग मनुष्य की मानसिक और रचनात्मक प्रतिभा को उद्घाटित करने के लिए करते हैं। कला या साहित्य के क्षेत्र में किसी भी तरह की संकुचित दृष्टि कुँवर जी को बर्दाश्त नहीं-"कला की, संगीत की, कविता की जात-पात नहीं होती-केवल मनुष्यता होती है, सुन्दरता होती है, नैतिकता होती है, आनन्द होता है, उल्लास होता है और हमें उदात्त की अनुभूति करा सकने की दैवी क्षमता होती है!"[16]

कुँवर नारायण ज़िन्दगी को एक साहित्यकार और कलाकार की दृष्टि से देखने का यत्न करते हैं। कलागत और संस्कृतिगत चेष्टाओं को जिस प्रकार राजनीति ने अपनी गिरफ़्त में ले लिया है, कुँवर जी उसे सही नहीं मानते हैं, न राजनीति के लिए, न कला के लिए। किसी भी कला की अभिव्यक्ति में आज़ादी के मायनों को वे समझते हैं इसलिए उसे हर कीमत पर बरकार रखना चाहते हैं। आज राजनीति का जो स्वरूप हमें अपने आस-पास देखने को मिलता है उसे देखते हुए लगता है कि सांस्कृतिक और कलागत चेष्टाएँ राजनीति के लिए उन अर्थों में प्रासंगिक नहीं रह गयी हैं जिन अर्थों में उन्हें होना चाहिए। जिस देश का इतिहास निर्भीक दार्शनिक परम्परा से अपना आधार ग्रहण करता हो वहाँ कलाकारों की रचनाधर्मिता राजनीति से सांठ-गाँठ करने से विकसित नहीं होने वाली बल्कि वहाँ कलागत चेष्टाएँ हर बंदिश से आज़ाद होनी चाहिए-राजनीति का भंडाफोड़ करने की सूरत में भी। व्यावसायिकता और राजनीति की कसौटी पर कलाओं का मूल्यांकन इसलिए भी नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उनकी दृष्टि नितांत भौतिक होती है। ध्यातव्य है कि साहित्य एवं कलाओं को कल्पना और सपनों में भी जिया जा सकता है। कुँवर नारायण इसे कला की शक्ति मानते हैं और जानते हैं कि यह जीवन से पलायन नहीं, बल्कि उसकी सामर्थ्य का अनुभव और विस्तार है-

"सब कुछ यथार्थ में ही नहीं जिया जाता है। एक बहुत बड़ा और सुन्दर जीवन कल्पनाओं में, सपनों में, कलाओं में भी जिया जाता है। उसे कैसे जिया जाये, यह हमें कविता और कलाएँ सिखाती हैं। यह जीवन में गुमराह होना नहीं है, उसकी अतिरिक्त सामर्थ्य का अनुभव और विस्तार है। यथार्थ के समानान्तर एक दूसरे प्रति-यथार्थ की रचना कर सकने की शक्ति और साहस की अनुभूति और कौशल है।"[17]

साहित्य और कला जीवन को विस्तार देते हैं। साहित्य हमें जीवन को देखने का नया कोण देता है जहाँ से हम अपने जीवनानुभवों पर भिन्न-भिन्न तरीकों से विचार कर सकें। कुँवर नारायण की पारिवारिक पृष्ठभूमि ऐसी नहीं थी जिससे वे साहित्य की ओर अभिप्रेरित होते। एक ऐसा परिवार जोव्यापार से जुड़ा हो उस परिवार में जन्मे बच्चे के पास इसके लिए पर्याप्त कारण रहे होंगे कि वह साहित्य की ओर न मुड़े। बावजूद इसके कुँवर नारायण ने न सिर्फ़ साहित्य रचना में रूचि ली बल्कि जिस मनोयोग और सक्रियता के साथ उन्होंने लगभग 6 दशकों तक लेखन-कार्य किया वह दुर्लभ है। जीवन से गहरी वाबस्तगी साहित्य की मूल प्रवृत्ति है। साहित्य की इस विशिष्टता ने कुँवर नारायण को इस क्षेत्र में आने के लिए अभिप्रेरित किया-"जब मैंने साहित्य को चुना तो यह बाकी सबका नकार या उससे पलायन नहीं था: अपने विशिष्ट क्षेत्र का चुनाव था, और उसी के माध्यम से पूरे जीवन से सामना था। कोई भी कविता या रचना अगर किसी-न-किसी स्तर पर जीवन से इस गहरी वाबस्तगी का एहसास नहीं करा पाती तो उसमें कहीं कुछ कमी है, वह कमज़ोर है।"[18]

जीवन और जीवन से जुड़े मूल्य साहित्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। साहित्य में वे मूल्य भी अपनी पूरी गरिमा के साथ उपस्थित रहते हैं जिसे हमारी पीढ़ी ने दैहिक-दैनिक जीवन के चक्कर में आकर हाशिये पर धकेल दिया है। कई बार वे मूल्य भी बहुत महत्वपूर्ण होते हैं जिसे इस समाज ने अव्यावहारिक या ग़ैरज़रूरी मान लिया है। 'ईमानदारी' ऐसा ही एक मूल्य है जिसकी

अहमियत को भुला दिया गया है। अगर हम अपने समय के लोगों के व्यवहार का अध्ययन करें तो पाएँगे कि हम सब एक ऐसे समय में जी रहे हैं जब व्यक्ति न अपने काम के प्रति ईमानदार है, न रिश्तों के प्रति। महत्वाकांक्षाएँइतनी बर्बर हो गयी हैं कि ईमानदारी को जीवन-मूल्य के रूप में स्वीकार कर जीना तो दूर की बात है, कई मौकों पर ईमानदारी को हास्यास्पद मान लिया जाता है। कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ते हुए यह महसूसा जा सकता है कि ईमानदारीऐसा मूल्य नहीं है जिसका कोई विकल्प हो। कवि ने अपने जीवन और कविता दोनों में इसे बहुत महत्त्व दिया है। उन्हें यह विश्वास है कि दुनिया में ईमान के खाते कभी बंद नहीं होंगे-

"कहीं कुछ भूल हो,

कहीं कुछ चूक हो कुल लेनी देनी में

तो कभी भी इस तरफ़ आते जाते

अपना हिसाब कर लेना साफ़

ग़लती को कर देना मुआफ़

विश्वास बनाए रखना

कभी बन्द नहीं होंगे दुनिया में

ईमान के खाते"[19]

ज़िन्दगी को देखने का नज़रिया बहुत हद तक हमारी मूल्य-चेतना को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए आजकल धर्म की जिस तरह की व्याख्याएँ सामान्य-जन के समक्ष प्रस्तुत की जा रही हैं उससे धर्म की एक कट्टर छवि बनती जा रही है। धर्म का उदात्त पक्ष जनता के सामने

नहीं आ पाता है। उससे भी ज़्यादा दुखद स्थिति तब उत्पन्न होती है जब 'आध्यात्मिकता' और 'धर्म' को एक मान लिया जाता है। कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ते हुए अपने देश की उस आध्यात्मिक विरासत से जुड़ने का अवसर मिलता है जिसमें आत्मिक विकास पर सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। आध्यात्मिकता के अस्तित्व को कुँवर नारायण न सिर्फ़ स्वीकारते हैं बल्कि उसे महत्त्व देते हैं। आध्यात्मिकता का जो चेहरा हमें कुँवर जी के वक्तव्यों में और उनकी कविताओं में दिखता है, वह दोषरहित है। किसी भी किस्म की कट्टरता और क्रूरता के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। न कोई आडम्बर है, न दिखावा। कुँवर जी आध्यात्मिकता को उस आत्मबल के रूप में ग्रहण करते हैं जिसे अतीत और परम्परा ने मानव जाति को थाती के रूप में दिया है। वे आध्यात्मिकता को दैनिक-व्यावहारिक स्तर पर कुछ इस तरह सेजी सकने की बात करते हैं कि वह हमारे विचार का हिस्सा बन जाए, हमारे अनुभव में शामिल हो जाए और हममें शामिल होकर वह हमारी ज़िन्दगी को उन्नत्ति के मार्ग पर अग्रसर करे- "आध्यात्मिक का अर्थ हर एक को पहले बिल्कुल अकेले, अपने लिए, खोजना और पाना पड़ता है। तभी वह अपने और सब के लिए अर्थपूर्ण बन पाता है। अध्यात्म शायद एकमात्र ऐसी चेष्टा है, जो 'निजी' से 'सर्व' में विकसित और विस्तृत होती है। इसलिए किसी भी धार्मिक अनुष्ठान या कर्मकाण्ड द्वारा उसके तत्व को नहीं पाया जा सकता। वह गहरे आत्मचिंतन और आत्ममंथन द्वारा ही संभव है। एक सच्चा आत्मज्ञानी दिखावटी कर्मकाण्डों से दूर भागेगा। एक बुद्ध, ईसा या गांधी के 'अध्यात्म' को इसी तरह समझा जा सकता है-उसके तत्व को आत्मसात करके।"[20]

सारतः यह कहा जा सकता है कि कुँवर नारायण की कविताओं में व्यक्त विविध मूल्य, जीवन को सार्थक बनाने के लिए ज़रूरी हैं। महत्वाकांक्षाओं की अंधी प्रतिस्पर्द्धाऔर भौतिक विकास को प्रगति मान लेने की होड़ ने उन जीवन-मूल्यों से मनुष्य को दूर कर दिया है जो मनुष्यता की बुनियाद हैं। 'सत्य', 'अहिंसा', 'ईमानदारी' , 'स्वतंत्रता' जैसे मूल्यों को कविता के माध्यम से कुँवर जी जीवन में वापसी करवाना चाहते हैं। कवि की उदात्त मूल्य-चेतना उन्हें किसी

भी क़िस्म की कट्टरता के विरोध का साहस देती है साथ ही सच को बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वीकार करने का विवेक भी देती है। इन कविताओं को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि बाहर की दुनिया से ज़्यादा संभावनाशील हमारे भीतर की दुनिया है। आत्मिक विकास पर जोर देती ये कविताएँ अंतरात्मा के महत्त्व को पुनर्स्थापित करती हैं और ज़िन्दगी में उन मूल्यों के पुनर्वास का रास्ता सुझाती हैं जिनके मायनों को मनुष्य ने भुला दिया है।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-11
2. कुँवरनारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-5
3. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-117
4. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-25
5. डॉ. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, पृष्ठ-17
6. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-54
7. (सं) भारती नारायण, सब इतना असमाप्त, पृष्ठ-79
8. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-79
9. वही, पृष्ठ-125
10. (सं) दिनेश कुमार शुक्ल, यतीन्द्र मिश्र, कई समयों में, पृष्ठ-106
11. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-112- 113
12. (सं) लीलाधर मंडलोई, नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2017, पृष्ठ-6
13. (सं) डॉ. जीतराम भट्ट, गीत चतुर्वेदी, इद्रप्रस्थ भारती: कुँवर नारायण विशेषांक, सितम्बर-अक्टूबर 2018, पृष्ठ-71
14. (सं) गीत चुतुर्वेदी, लेखक का सिनेमा, पृष्ठ-178
15. वही, पृष्ठ-5
16. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-177
17. वही, पृष्ठ-84
18. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-17
19. (सं) दिनेश कुमार शुक्ल, यतीन्द्र मिश्र, कई समयों में, पृष्ठ-100
20. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश पृष्ठ-125-126

4.3 कुँवर नारायण के काव्य में नैतिकता संबंधी मूल्य

आज जब हम विकास के तथाकथित उच्च सोपानों पर पहुँच चुके हैं तो यह बात स्पष्ट हो चली है कि विकास का अर्थ केवल भौतिक विकास से नहीं हो सकता। मनुष्य के जीवन की दिशा और दशा का निर्धारण करने में नैतिक चेतना अपनी महती भूमिका निभाती है। ध्यातव्य है कि नैतिक मूल्यों का सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश तथा जीवन-विवेक से गहरा संबंध है। साहित्य का जीवन से अविच्छिन्न रूप में जुड़ाव होने के कारण नीति से भी घनिष्ठ संबंध रहा है। साहित्य और नीति के इस परस्पर संबंध को वाल्मीकि की रामायण से लेकर आधुनिक काल तक सर्वत्र महसूस किया जा सकता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जब यह लिखते हैं कि "काव्य का बड़ा गुण यह होना चाहिए कि उसके अवलोकन से पाठक के चित्त में उन्नति के विचार आयें, न कि जार-कर्म के। अतएव उसमें प्रबन्ध के किसी न किसी हेर-फेर में उदात्त भावों का रमणीय वर्णन भी आवश्यक है।"[1]

चित्त में उन्नति का प्रयास नैतिक साहस द्वारा ही संभव है। महावीर प्रसाद द्विवेदी इसे साहित्य का एक बड़ा गुण मानते हैं।ग़ौरतलब है कि साहित्य कभी भी स्थूल मनोरंजन सामग्री मात्र बनकर नहीं रह सकता है। रीतिकालीन साहित्य जिसपर बराबर यह आरोप लगता रहा है कि वह घोर श्रृंगारिक है उस कालावधि में भी वृन्द जैसे कवि हुए हैं जिन्होंने नीतिपरक दोहे लिखे। बिहारी जैसा श्रृंगारिक कवि भी नीति का दामन नहीं छोड़ता। कहने का अभिप्राय यह है कि साहित्य जिस मार्ग से होकर गुज़रता है वह नीति का मार्ग है और यह मार्ग राज्य, धर्म और सत्ता के स्वार्थों से ठीक उलटा है। इस सन्दर्भ में निर्मल वर्मा का मत दृष्टव्य है- "विश्व साहित्य के सबसे मार्मिक और संभवतः सबसे मूल्यवान स्थल वे हैं, जब उपन्यास का, नाटक का कोई पात्र घोर संकट और यातना के क्षणों में सहसा उन खोई हुई मर्यादाओं और विस्मृत संस्कारों से साक्षात करता है, जिसे राज्य, धर्म और सत्ता ने अपने स्वार्थों के कारण नष्ट कर दिया था...मनुष्य की मूल

मर्यादा का खोया हुआ लोक, सहसा वह कठघरा बन जाता है, जिसमें समाज और राज्यसत्ता की लौकिक मर्यादाएँ छोटी, बौनी, क्षुद्र और झूठी जान पड़ने लगती हैं।"[2]

जिन खोई हुई मर्यादाओं और विस्मृत संस्कारों का ज़िक्र निर्मल वर्मा के उपर्युक्त कथन में है, उसका संबंध नैतिक चेतना के निर्माण से गहरे अर्थों में जुड़ा हुआ है। नैतिक चेतना सिर्फ़ वर्तमान नहीं, अतीत से भी संबंध रखती है और कई मायनों में हमारी सांस्कृतिक विकास यात्रा में भी अपनी महती भूमिका निभाती है। भारतीय नीतिशास्त्र में करुणा, दया, अहिंसा, परोपकार जैसे तत्व की उपस्थिति भारतीय संस्कृति को उदात्त बनाती है। नीति, बेहतर जीवन आचरण का मार्ग प्रशस्त करने का कार्य करती है शायद इसीलिए कविता एवं काव्य-चिंतकों का नीति से कोई विरोध नहीं रहा है। पाश्चात्य आलोचकों ने कविता में नीति को विशेष महत्त्व दिया है। उसी तरह भारतीय विद्वानों ने भी नीति और काव्य के शाश्वत संबंध को काफ़ी विस्तार से व्याख्यायित किया है। डॉ. तारकनाथ बाली जैसे विद्वानों ने रस सिद्धांत की नैतिक व्याख्या की है जिसमें उन्होंने स्वीकारा है कि "पाश्चात्य साहित्य में भी कलावादियों के अतिरिक्त सभी ने काव्य और नैतिकता के घनिष्ठ संबंधों को महत्त्व दिया है।"[3]

कुल मिलाकर काव्य और नैतिकता को अलग करके नहीं देखा जा सकता। जीवन के प्रति कविता का झुकाव उसे नैतिक-चेतना से युक्त रहने के लिए प्रतिबद्ध बनाता है। यह तयशुदा बात है कि जब तक कविता जीवनवादी रहेगी तब तक कविता से नीति का विभेद कर पाना संभव नहीं है, क्योंकि लोक-व्यवहार और जन-कल्याण जैसी भावनाएं नीति से संचालित हुआ करती हैं। आज जब हम आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की ओर बढ़ चले हैं, और इस यात्रा में नीति के पथ से कई बार विचलित हुए हैं,ऐसे में कविता हमारा पाथेय बनती है।

➢ नैतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में कुँवर नारायण का काव्य

कुँवर नारायण की कविता भारतीय दार्शनिक परम्पराओं से प्रभावित रही है। सांख्य, उपनिषद, अद्वैत मत आदि अपने उदार जीवन-मूल्यों की वजह से कुँवर नारायण को आकर्षित करते रहे हैं। जब कविता में नीति की बात आती है तो यहाँ भी कुँवर नारायण भारतीय नीतिशास्त्र में न सिर्फ़ अमूल्य तत्व को तलाशते हैं बल्कि उसे और व्यापक तथा जीवनोपयोगी बनाते हैं। उनकी कविताओं में इस प्रयास को सर्वथा लक्षित किया जा सकता है। नैतिक साहस उनकी कविता की वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द कुँवर नारायण अपने काव्य को बुनते हैं। नैतिक-चेतना और नैतिक-संस्कृति कुँवर नारायण की कविता का केंद्र है यही कारण है कि सामाजिक-सांस्कृतिक सवालों से कुँवर नारायण की कविता कभी घबराती नहीं है। कुँवर नारायण की कविताएँ हमारे आत्मा के लोक में हौले-हौले प्रवेश करती हैं और हमें घृणा, हिंसा, साम्प्रदायिकता जैसे भाव का त्याग करने का नैतिक साहस प्रदान करती हैं। कुँवर नारायण की कविताएँ हमें आत्म-बोध के लिए प्रेरित करती हैं और मनुष्य को नैतिक रूप से सजग रखती हैं। इतिहास और मिथक के द्वारा अपने समय को देखने वाला कवि, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी नैतिकता का दामन नहीं छोड़ता। क्योंकि नैतिक साहस मनुष्य की अमूल्य-निधि है इसका उन्हें ज्ञान है।

समाज में रहने वाले हर व्यक्ति का कुछ नैतिक दायित्व होता है। अगर हम इस नैतिक दायित्व का निर्वहन करते हैं तो समाज सुदृढ़ होता है और अगर नहीं करते हैं तो सामाजिक ढाँचा कमजोर होता है। अगर हम अपने पड़ोसी का नस्ल और मजहब देखकर उससे भेदभाव करने लग जाएँ, तो हम एक सांप्रदायिक समाज को निर्मित करेंगे जिसकी कीमत अंततः मनुष्यता को चुकानी पड़ेगी।

कुँवर नारायण अपने नैतिक विजन के सहारे समाज के रहस्यात्मक यथार्थ पर मार्मिक टिप्पणी करने से नहीं चुकते हैं। यहाँ उनकी कविता 'सम्मेदीन की लड़ाई' का ज़िक्र महत्वपूर्ण है। कुँवर नारायण सम्मेदीन के विषय में लिखते हैं, "दुनिया को ख़बर रहे/ कि एक बहुत बड़े नैतिक साहस का/ नाम है सम्मेदीन"[4]सम्मेदीन उस नैतिक चेतना का प्रहरी है जो भ्रष्ट तंत्र के विरुद्ध लड़ाई की हिम्मत रखता है। कवि जानते हैं कि इस साहस की कीमत सम्मेदीन को अपनी जान देकर चुकानी पड़ेगी क्योंकि सारी व्यवस्था भ्रष्टाचार के साथ खड़ी है और वह निहत्था है। बावजूद इसके उसकी यह लड़ाई महत्वपूर्ण है क्योंकि उसका नैतिक साहस जिस उजाले को जन्म देगा वह सम्मेदीन के बाद भी भ्रष्टाचार से मुठभेड़ करेगा। कवि लिखते हैं-

"बचाये रखना

उस उजाले को

जिसे अपने बाद

ज़िंदा छोड़ जाने के लिए

जान पर खेल कर आज

एक लड़ाई लड़ रहा है

किसी गाँव का कोई ख़ब्ती सम्मेदीन"[5]

मानवता ऐसी लड़ाइयों की कर्जदार रहा करती हैं। कवि के लिए हार-जीत से ज्यादा महत्त्व लड़ाई के तरीके का है। कुँवर नारायण एक और मामले में विशिष्ट हैं। वे अपने नैतिक विजन को बौद्धिकता के साथ जोड़कर कविता में प्रस्तुत करते हैं। और उनकी बौद्धिकता कभी भी स्वयं के विशिष्ट होने का दावा नहीं करती है। न ही दूसरे की ज़िन्दगी में बदलाव की कोई क्रांतिकारी

घोषणा करती है। वह तो ख़ुद को 'मनुष्यतर' बनाने के लिए प्रयत्नशील है। वे विचारों के महत्त्व को समझने वाले कवि हैं, इसलिए यह उद्घोषणा करने का साहस करते हैं-

"गले तक धरती में गड़े हुए भी

जितनी देर बचा रह पाता है सिर

उतने समय को ही अगर

दे सकूँ एक वैकल्पिक शरीर

तो दुनिया से करोड़ों गुना बड़ा हो सकता है

एक आदमक़द विचार।"[6]

कुँवर नारायण के काव्य में सामाजिक नैतिकता मानवीय संवेदनाओं के पोषण का काम करती है। समाज के उपेक्षित वर्ग से कवि की सहानुभूति है। चाहे यह उपेक्षा रंगभेद की वजह से हो, आर्थिक विषमता की वजह से हो या फिर जाति की वजह से कवि को यह स्वीकार नहीं। कवि की नैतिक चेतना इस बात की इजाज़त नहीं देती है कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से हीन समझा जाए। 'अपने सामने' काव्य संग्रह में संग्रहित उनकी एक कविता है-'काले लोग'। इस कविता में काले लोगों के साथ होने वाले अन्याय को कवि रेखांकित करते हुए कवि लिखते हैं-

"सुना है वे भी इन्सान हैं, मगर काले हैं,

जिन्हें कुछ गोरे जानवरों की तरह पाले हैं।

आदमी की किताब में इनकी भी

एक जात होती है-एक प्रकार होता है,

और इनकी असभ्यता से भी ज़्यादा ख़तरनाक सभ्यता में

इनका शिकार होता है।"[7]

इसे नैतिक-मूल्यों के ह्रास का परिणाम ही समझा जाना चाहिए कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से नफ़रत करने का आधार रोज़ ही ढूंढ लेता है। 'मनुष्य' शब्द को हमने बहुत संकुचित कर दिया है। क्षणिक स्वार्थ की वजह से हमने मानवता,सत्य,अहिंसा आदि को ताक पर रख दिया है। कुँवर जी की कविताओं में मनुष्य को संवेदना और प्रेम के धरातल पर पुनः स्थापित करने का प्रयास दिखाई पड़ता है। प्रेम में कवि का दृढ़ विश्वास उनकी कविता को वर्तमान सामाजिक विसंगतियों के प्रतिपक्ष के रूप में स्थापित करता है। प्रेम का जो सहज और उदात्त रूप कुँवर जी की कविता में व्यक्त हुआ है उसमें वासना की जगह नहीं है। कवि जानता है कि वासना प्रेम जैसे उदात्त भाव को अनैतिक कर्म में परिणत कर सकता है-

"तुम्हें पाने की अदम्य आकांक्षा

देह की बन्दी है।

तुम्हें देह तक लाने की इच्छा तो

शव सी गन्दी है।"[8]

प्रेम से लेकर भक्ति तक मनुष्य के हर भाव का उदात्त स्वरूप में प्रकटीकरण कुँवर की कविताओं में देखने को मिलता है। कुँवर जी इस मायने में भी विश्वकवि हैं क्योंकि उनकी कविता विश्व के किसी भी धर्म के प्रति एकपक्षीय नहीं है। कुँवर नारायण की कविता में जहाँ भी धर्म संबंधी विचार आए हैं, वहाँ किसी तरह की साम्प्रदायिकता नहीं है,कुंठा नहीं है, प्रतिद्वंद्विता नहीं

है; अपितु इनकी कविताओं में अभिव्यक्त धर्म के स्वरूप को देखकर धर्म संबंधी इनके उदार नैतिक दृष्टिकोण का पता चलता है। कुँवर नारायण का धर्म संबंधी दृष्टिकोण कितना उदार है यह जानने के लिए 'कोई दूसरा नहीं' में संगृहीत कविताओं का पाठ महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में आडंबर और बाज़ार के गठजोर ने धर्म को व्यापार और धर्म स्थलों को दुकानों में तब्दील कर दिया है। कुँवर नारायण अपनी कविता 'पर्यावरण' में लिखते हैं-

"राम और अल्ला के बन्दों का जंगल है,

कानफोड़ आवाजों का अखंड दंगल है।

धर्म का मतलब अब धन्धा है निठल्लों का,

पटरी पर दुकान-व-मकान दो तल्लों का।"[9]

धर्म जब व्यापार बन जाए ऐसे वक्त में एक सचेत कवि की कलम में इतनी ताक़त तो होनी ही चाहिए कि वह धार्मिक आडंबर के पीछे के झूठ को बेनक़ाब कर सके। हमें धर्म संबंधी अपनी मान्यताओं पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। जब किसी धर्म का अनुयायी अपने धर्म की ज़रा सी आलोचना पर प्रतिक्रियावादी होने लगता है तो व्यापक परिप्रेक्ष्य में वह अपने धर्म को ही नुकसान पहुँचा रहा होता है।हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि किसी भी धर्म की बुनियाद मानवता और भाईचारे में है और जब भी कोई व्यक्ति,संस्था या सत्ता धर्म की मूल प्रकृति पर चोट करेगा तब उसका सृजनात्मक प्रतिवाद ज़रूरी हो जाएगा। इस दृष्टि से कुँवर नारायण की 'अयोध्या,1992' शीर्षक कविता दृष्टव्य है। इस कविता में कवि, देश के तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए राम से यह आग्रह करते हैं कि आप पुराण और धर्मग्रंथ में ही लौट जाइए क्योंकि वर्तमान समय आपके त्रेता युग से ज़्यादा भयावह है- "हे राम,कहाँ यह समय/ कहाँ तुम्हारा त्रेता युग/ कहाँ तुम मर्यादा पुरुषोत्तम/ और कहाँ यह नेता-युग!/ सविनय निवेदन है प्रभु कि लौट

जाओ/ किसी पुराण-किसी धर्मग्रन्थ में/ सकुशल सपत्नीक.../अबके जंगल वो जंगल नहीं/ जिनमें घूमा करते थे वाल्मीक!"[10] 'अयोध्या,1992' जिस समय लिखा गया उस समय की राजनीतिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में जब हम इस कविता का मूल्यांकन करते हैं तो यह कविता यथार्थ की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ कवि के धर्म संबंधी नैतिकता का प्रमाण मालूम होती है। ग़ौरतलब है कि कुँवर नारायण अवध की संस्कृति में पले बढ़े हैं, और राम अवध की संस्कृति का गौरव हैं। ऐसे में राम के नाम पर की जा रही हत्या कवि को चोट पहुँचाती है। कवि की नैतिक चेतना इस बात की इजाज़त नहीं देती है कि 'राम' के नाम को किसी एक विवादित स्थल में सिमटता हुआ वह स्वीकार करें-

"इससे बड़ा क्या हो सकता है

हमारा दुर्भाग्य

एक विवादित स्थल में सिमट कर

रह गया तुम्हारा साम्राज्य

अयोध्या इस समय तुम्हारी अयोध्या नहीं

योद्धाओं की लंका है,

'मानस' तुम्हारा 'चरित' नहीं

चुनाव का डंका है!"[11]

राजनीतिक मंशा से संचालित होकर राम का इस्तेमाल किया जाना दुःखद है। कुँवर नारायण सर्व-धर्म समभाव की भावना से प्रेरित हैं। यहाँ कुँवर नारायण के कबीर का ज़िक्र लाज़मी

है। उनकी एक कविता है 'आजकल कबीरदास' जो कि 'इन दिनों' काव्य-संग्रह में संगृहीत है। यह कविता कई मायनों में विशिष्ट है। इसकी विशिष्टता का एक पक्ष यह भी है कि इसमें कवि के धर्म संबंधी उदात्त नैतिकता की झलक मिलती है। कुँवर नारायण का कबीर काशी छोड़कर मगहर में आ बसा क्योंकि वह जग के व्यंग्य से तंग आ चुका है। वह स्वयं को किसी एक धर्म या जाति की सीमा में बांधकर नहीं रखना चाहता है और अक्खड़ खड़ी बोली में यह बोलने का साहस रखता है-

"कोई फ़र्क़ नहीं इसमें

कि मैं 'दास' हूँ या 'प्रसाद'

'नाथ' हूँ या 'दीन'

'गुप्त' हूँ या 'नारायण'

या केवल एक समुदाय, हिन्दू या मुसलमान,

या मनुष्य की सामूहिक पहचान

ईश्वर-और-अल्लाह,

या केवल एक शब्द में रमण करता

पूरा ब्रह्मांड,

या सारे शब्दों से परे एक रहस्य"[12]

कबीर को इस बात से फ़र्क नहीं पड़ता कि उसने कौन सी जाति, कौन से समुदाय में जन्म लिया है। वह तो मनुष्य की सामूहिक पहचान बनना चाहता है। ध्यातव्य है कि साम्प्रदायिकता का दायरा संकीर्ण हुआ करता है जबकि सामूहिकता व्यापकता का द्योतक है। कुँवर नारायण की नैतिकता इस बात की इजाज़त नहीं देती है कि वह मनुष्य के पहचान को किसी जाति या उपनाम में सीमित कर दें। कवि ऐसी किसी भी सत्ता को मानने के लिए तैयार नहीं हैं जो मनुष्य-मनुष्य में भेद करता है। 'ट्यूनीशिया का कुआँ' शीर्षक कविता में कवि ट्यूनीशिया के उस कुएँ का ज़िक्र करते हैं जिसके विषय में यह धारणा है कि उसका पानी मक्का के पवित्र कुएँ के जल से जुड़ा है। इस प्राचीन धारणा को सहारा बनाकर कवि जो स्थापना देते हैं वह बहुत महत्वपूर्ण है- "मैंने तो यह भी सुना है/ कि धरती के अंदर ही अंदर/ हर कुएँ का पानी/ हर कुएँ से जुड़ा है।"[13]ग़ौरतलब है कि भारत के कई प्रान्तों में आज भी दो धर्म और जातियों के लोग एक कुएँ से पानी नहीं पीते हैं। कुँवर नारायण अपनी कविता में प्रतीकों का चुनाव बहुत समझदारी से करते हैं। कुआँ का ज़िक्र उन्होंने यूँ ही नहीं किया है। निश्चय ही उनके जेहन में उस भारत की तस्वीर भी रही होगी जहाँ अछूत की समस्या वर्षों तक मानवता को शर्मसार करती रही है। और आज भी कई लोग इस जातिगत और धार्मिक भेद-भाव के शिकार हो रहे हैं।

कुँवर नारायण की एक महत्वपूर्ण काव्यकृति है 'आत्मजयी'। इस काव्यकृति को पढ़ते हुए कवि के धर्म संबंधी उदार दृष्टिकोण का पता चलता है। यह काबिले ज़िक्र है बलि प्रथा को अनुष्ठान से इस तरह जोड़ दिया गया है कि आज भी कई त्योहारों में पशु-बलि को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। इस प्रथा के पीछे की अमानवीयता को प्रायः भुला दिया जाता है। कुँवर नारायण के नचिकेता के लिए यह असह्य है-

"नहीं चाहिए तुम्हारा यह आश्वासन

जो केवल हिंसा से अपने को सिद्ध कर सकता है।

नहीं चाहिए वह विश्वास, जिसकी चरम परिणति हत्या हो।

मैं अपनी अनास्था में अधिक सहिष्णु हूँ,

अपनी नास्तिकता में अधिक धार्मिक,

अपने अकेलेपन में अधिक मुक्त,

अपनी उदासी में अधिक उदार।"[14]

नचिकेता उस लाभ को प्राप्त करने से इंकार करता है जिसके लिए हिंसा को अपनी जीवनशैली का हिस्सा बनाना अनिवार्य है। यह केवल नचिकेता का स्टैंड नहीं है, यह कुँवर नारायण का भी स्टैंड है जो हिंसा को अस्वीकृत करते हैं। नचिकेता जानता है कि उसके आसपास जो लोग हैं वे उसकी जीवन-दृष्टि को नहीं समझ पाएँगे। लेकिन उसे फ़िक्र नहीं है। वह अपने समाज द्वारा धर्म की बनी बनाई परिभाषा में फिट होना नहीं चाहता है, क्योंकि इस परिभाषा में मनुष्य को अमानवीय बनाने का उपक्रम शामिल है। पशुबलि का विरोध करना समाज की नज़रों में नास्तिकता हो सकता है परन्तु नचिकेता की नज़रों में वह एक धार्मिक कृत्य है क्योंकि नचिकेता का धर्म इस बात की इजाज़त नहीं देता कि अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए वह निर्दोष पशु की बलि में सहभागी बने।

धर्म के नाम पर आज जो आडम्बर चारों ओर पसरा हुआ है उसने धर्म के वास्तविक स्वरूप को हमसे दूर कर दिया है। हम यह भूलते जा रहे हैं कि सोने के मंदिरों में ईश्वर नहीं रहा करते, उनका वास तो करुण हृदय में होता है। ज़रूरी नहीं है कि मंत्र का उद्घोष और शंखनाद करने से ही ईश्वर तक हमारी बात पहुँचे, एक आत्मीय पुकार भी ईश्वर तक हमारी बात पहुँचा सकती है। धार्मिक आडम्बरों को लक्ष्य करके 'आत्मजयी' का कवि लिखता है-

"यह सब धर्म नहीं-धर्म सामग्री का प्रदर्शन है !

अन्न, घृत, पशु, पुरोहित, मैं...

शायद इस निष्ठा में हर सवाल बाधा है

जिसमें मनुष्य नहीं अदृश्य का साझा है!"[15]

कुँवर नारायण मनुष्य को पूर्ण विकसित रूप में देखने के आकांक्षी हैं और आडंबर को मानने वाला मनुष्य पूर्ण विकसित नहीं हो सकता। 'धर्म' और 'आध्यात्म' की जो नितान्त लौकिक और वस्तुपरक व्याख्या की जाती रही है वह दरअसल अधूरी व्याख्या है। मध्यकालीन कवियों ने मनुष्य पर की जा रही ज्यादतियों से उबरने के लिए धर्म का प्रयोग किया। इस देश ने गाँधी को विदेशी साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ अहिंसात्मक क्रान्ति करते हुए देखा है। गांधी के सम्पूर्ण जीवन दर्शन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उनके लिए 'धर्म' एक नैतिक शक्ति रही है। उनके धर्म की व्याख्या में मानव कल्याण निहित है। कुँवर जी 'अध्यात्म' को नैतिकता का मार्ग प्रशस्त करने का निमित्त स्वीकार करते हैं।"अध्यात्म मनुष्य के स्वभाव में है। भारतीय चिंतन ने मनुष्य के स्वभाव के इस आत्मिक यथार्थ को गहराई से पहचाना, और अगर उसे कुछ अधिक महत्त्व दिया, तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह पलायनवादी या अंतर्मुखी और लोक-विमुख था। इसके बिना एक दृढ़ नैतिक समाज और संस्कृति का निर्माण दुस्साध्य है।"[16]

राजनीति और बाज़ार के गठजोर ने धर्म और आध्यात्म के मूल अर्थ से जन-मानस को दूर कर दिया है। जिस आत्मिक यथार्थ को पहचानने की बात कुँवर जी कर रहे हैं उसके लिए आडंबर से दूर जाना ज़रूरी है। बाज़ार ने धर्म को आडंबर से भर दिया है। विद्वानों का एक समूह यह मानता है कि वर्तमान समय कविता के लिए कठिन समय है। इसके पीछे के उत्तरदायी कारणों में सबसे प्रधान कारण बाज़ारवाद का बढ़ता दायरा है। ऐसा नहीं है कि बाज़ार मानव-सभ्यता के

लिए कोई नया शब्द है। वह तो हर समय में मनुष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए रहा है। परन्तु पिछले तीस सालों में बाज़ार इतनी मजबूती से हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ है, जो कभी-कभी डरावना लगता है। आज बाज़ार हमारी समझदारी तक को हाईजेक करने की शक्ति रखता है। ऐसे में हमारे चयन-बोध हमारी रुचि का निर्धारण भी बाज़ार करने लग गया है। एक तरफ़ यह बाज़ार है दूसरी और इसे खुली लूट की छूट देती राजनीति। आज जब राजनीति ने साहित्यिक और कलात्मक गतिविधियों को भी अपने गिरफ़्त में ले लिया है। ऐसे कठिन समय में कुँवर जी यह लिखने का साहस करते हैं-

"लड़ाई सचमुच अगर

सही और ग़लत की ही है

तो ज़रूरी है कि सबसे पहले

तय करें

कि क्या सही और क्या ग़लत है

राजनीति की भाषा में नहीं

नीति की भाषा में।"[17]

कुँवर जी की कविताओं में राजनीति के क्षेत्र में आए नैतिक ह्रास को अभिव्यक्त होते हुए देखा जा सकता है।

➢ कवि होने का नैतिक दायित्व

ज़िन्दगी को ज़्यादा वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश करना, तकनीक के चूह-दौड़ में अंधा होकर कूद जाने के बजाय ठहरकर आत्मिक चिंतन के लिए अवकाश ढूंढना एक कवि की नैतिक ज़िम्मेदारी है। एक कवि की दृष्टि मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना चाहती है, और हमारे समय की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि मनुष्य का व्यवहार मानवोचित नहीं है। वर्तमान समय में व्यावसायिक मानसिकता संक्रामक रूप ले चुकी है। इसी व्यावसायिक मानसिकता का शिकार होकर हम कई बार कविता के अस्तित्व पर भी सवाल उठाते हैं। हम कविता को भी अपनी भौतिक ज़रूरतों को पूरा करने का माध्यम मानने लग जाते हैं, और जब देखते हैं कि कविता द्वारा हमारी स्थूल ज़रूरतें पूरी नहीं हो रही हैं तो कविता को अपने समाज के लिए अनुपयोगी मानने लग जाते हैं। कुँवर नारायण इस जल्दबाज़ी को घातक मानते हैं- "आज अगर कविता कम पढ़ी और सुनी जा रही है, तो इससे यह आसान नतीजा निकाल लेना कि समाज को उसकी ज़रुरत नहीं भयानक ज़ल्दबाज़ी होगी"[18]

कुँवर नारायण कवि की यह नैतिक ज़िम्मेदारी मानते हैं कि वह ज़िन्दगी को मात्र व्यावसायिकता या भौतिकता तक सीमित करके न देखे बल्कि ज़्यादा बड़े परिप्रेक्ष्य में जीवन को देखते हुए उसकी सार्थकता के लिए प्रयासरत रहे। वे कवि को किसी भी किस्म की रूढ़ि में बंधता हुआ नहीं देखना चाहते हैं। वे ना भाषा और न ही विचार के स्तर पर रूढ़िवादिता को स्वीकार करते हैं। कवि का उद्देश्य किसी तात्कालिक लक्ष्य की प्राप्ति मात्र नहीं होना चाहिए। एक कवि को भविष्य का दृष्टा इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह तात्कालिक लाभ से ऊपर उठकर सोच पाए। कुँवर नारायण किसी भी बड़े कार्य का बीड़ा उठाने वाले से इस नैतिक साहस की अपेक्षा करते हैं कि वह तात्कालिक लाभ से ऊपर उठकर सोच सके- "किसी बड़ी उपलब्धि, अन्वेषण या आविष्कार की चेष्टा अपने को केवल तत्काल लाभ

की सीमा में नहीं सोचती, काल के बृहत्तर या बृहत्तम आयाम में रखकर सोचती है। हो सकता है उसके पाठक या ग्राहक उसे अपने युग में नहीं, किसी अन्य युग में मिलें। कोई भी बड़ा काम उठाने वाले में अगर इतना आत्मिक और नैतिक बल नहीं है कि वह अपने समय से ऊपर उठ सके, तो शायद वह ऐसा साहित्य दे भी नहीं पाएगा जो उसके समय के बाद भी जीवित रहे। ऐसी चेष्टाएँ सामान्य 'लोकप्रियता' से पहले बृहत्तर 'लोक कल्याण' की बात सोचती हैं।"[19]

इस बृहत्तर लोक कल्याण की चेष्टा के कारण कुँवर नारायण साहित्य को वह सबकुछ दे सकने में समर्थ हुए जो उन्हें विश्वजनीन बनाता है। कुँवर जी लड़-भिड़कर आगे बढ़ जाने वाली प्रतिस्पर्धा से इनकार करते हैं। वे न किसी वाक-युद्ध का हिस्सा बनते हैं न ही साहित्य के किसी गुटबाजी में शामिल होते हैं। नैतिकता को वे मानव-जीवन के लिए ज़रूरी मानते हैं। कुँवर जी जानते हैं कि नैतिकता के महत्त्व को जीवन-अनुभव द्वारा जाना जा सकता है उसे तर्क द्वारा साबित नहीं किया जा सकता-"नैतिकता को तर्क से साबित नहीं किया जा सकता। वह अनुभव-सिद्ध बुद्धिमत्ता की कोटि में आता है। उसका औचित्य-अनौचित्य व्यवहार से सिद्ध होता है, और समय से पुष्ट। नैतिकता के तरफ़दार सच्चे चश्मदीद गवाह होते हैं, चतुर वकील नहीं।"[20]

अपनी कविताओं में कुँवर जी भी चश्मदीद गवाह की तरह युग के यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। आज की हिंसात्मक वृत्तियों और अति-वस्तुपरक सभ्यता के ख़िलाफ़ उनकी कविता एक जबरदस्त नैतिक मोर्चा है। ये कविताएँ जीवन में नैतिक-साहस के महत्त्व को बतलाती हैं। जीवन का कोई भी क्षेत्र नैतिक मूल्यों से अछूता नहीं है। मनुष्य जब तक लोभ और डर के आगे अपने घुटने टेकता रहेगा, जबतक उसके जीवन-विवेक पर महत्वकांक्षाएँ हावी रहेंगी वह नैतिक मूल्यों की कीमत नहीं समझ पाएगा। कुँवर जी की कविताएँ नैतिक साहस में जीवन की सार्थकता के सूत्र खोजता है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. सुरेशचन्द्र गुप्त, आधुनिक कवियों के काव्य सिद्धान्त, पृष्ठ-104
2. निर्मल वर्मा, शताब्दी के ढलते वर्षों में, पृष्ठ-39
3. डॉ. नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पृष्ठ-352-362
4. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-18
5. वही, पृष्ठ-19
6. वही, पृष्ठ-40
7. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-95
8. कुँवर नारायण, परिवेश: हम-तुम, पृष्ठ-27
9. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं,पृष्ठ-121
10. वही, पृष्ठ-71
11. वही,पृष्ठ-70
12. कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-16
13. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-32
14. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-24
15. वही, पृष्ठ-26
16. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-134
17. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ- 37
18. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश,पृष्ठ-15
19. कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-108
20. वही, पृष्ठ-63

4.4 प्रेम और जिजीविषा

'प्रेम' और 'जिजीविषा' कुँवर नारायण के काव्य का केन्द्रीय कथ्य है।जहाँ एक ओर उनकी कविताओं में प्रेम का उदात्त स्वरूप हमें देखने को मिलता है, प्रेमी हृदय की वेदना देखने को मिलती है, वहीं दूसरी ओर कठिन परिस्थितियों में भी जीवन को जीने की उत्कट आकांक्षा देखने को मिलती है। कुँवर जी मनुष्य को मुश्किलों से लड़ते-भिड़ते देखना चाहते हैं। जब एक पाठक कुँवर नारायण की कविताओं की दुनिया में प्रवेश करता है तो पाता है कि यहाँ जीवन से पलायन नहीं है, बल्कि यहाँ विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में भी सार्थक जीवन जीने की कोशिश है। मानव जीवन की संभावनाओं को पंख देतीं ये कविताएँ कई बार आत्मिक होते हुए भी सार्वभौमिक सत्य को बयान करती हैं। कुँवर नारायण की कविताएँ अपने समय और परिवेश से घनिष्ठ रूप में जुड़ी हुई भी हैं और उसका अतिक्रमण भी करती हैं।चाहे 'कुमारजीव' हो या 'नचिकेता', चाहे 'कबीर' हों या 'खुसरो' जब कुँवर नारायण की कविताओं में इनकी उपस्थिति को हम देखते हैं तो पाते हैं कि ये देश और काल की भौतिक अवधारणाओं को झुठलाते हुए अपने समय से हमारे समय की यात्रा करते हैं। अपनी पुस्तक 'आज और आज से पहले' में कुँवर जी ने कवि के विषय में जो बात कही है वह उनपर अक्षरशः लागू होती है- "उसकी जिजीविषा का स्रोत उदात्त अर्थों में आत्मिक और उसी नाते सार्वभौमिक भी हो। समकालीन और स्थानीय पर उसकी पकड़ सच्ची और प्रमाणिक होनी चाहिए लेकिन उस तक सीमित नहीं, अपनी व्यापकता और सदाशयता में दोनों का अतिक्रमण करती हुई भी हो।"[1]

कुँवर नारायण भी अपनी कविताओं में समकालीनता और स्थानीयता तक कभी सीमित नहीं हुए, न ही उनकी कविता कभी व्यक्तिगत हुई। उनकी व्यक्तिगत दिखने वाली कविताएँ भी व्यापक मूल्य-बोध और जीवन-सत्य को वहन करती हैं। यही बात उनकी प्रेम संबंधी कविताओं के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है। जब उनकी कविताओं में प्रेम उपस्थित होता है तो वह एक

कोमल भाव मात्र नहीं लगता। वह जीवन की अनिवार्य ज़रूरत मालूम होता है जिसके अभाव में मनुष्य का जीवन सार्थक नहीं हो सकता। कुँवर नारायण की कविताओं में व्यक्त जीवन-दृष्टि एवं मूल्य-बोध का इस प्रेम से गहरा नाता है। इस उपअध्याय के अंतर्गत कुँवर नारायण की कविताओं में व्यंजित प्रेम को विश्लेषित और व्याख्यायित किया गया है तथा उनकी कविताओं में निहित जिजीविषा को चिन्हित करने का प्रयत्न किया गया है।

➢ कुँवर नारायण की कविताओं में प्रेम

कुँवर जी जानते हैं कि प्रेम की राह आसान नहीं है। इस कठिनता के बावजूद कवि को प्रेम का मार्ग बार-बार अपनी ओर आकर्षित करता है। आज के समय में जब हमने हिंसात्मक शब्दावलियों से अपनी भाषाई दुनिया को लहूलुहान कर लिया है, आज जब विनम्रता, सदाशयता, करुणा, प्रेम, त्याग और पवित्रता जैसे शब्द हमसे दिनोंदिन दूर होते जा रहे हैं, ऐसे वक्त में कुँवर नारायण की कविताएँ उनकी प्रतिबद्धता की पुख्तगी की प्रमाण हैं। कवि लिखते हैं-

"इन गलियों से

बेदाग़ गुज़र जाता तो अच्छा था

और अगर

दाग़ ही लगना था तो फिर

कपड़ों पर मासूम रक्त के छींटे नहीं

आत्मा पर किसी बहुत बड़े प्यार का जख़्म होता

जो कभी न भरता।"[2]

कभी न भर सकने वाले जख़्म चयन कवि के लिए आसान नहीं रहा होगा पर कुँवर जी जानते हैं कि जिस रक्तरंजित-हिंसात्मक समय में आज का मनुष्य जी रहा है वह सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिए कितना घातक है। उपर्युक्त कविता के माध्यम से यह भी समझा जा सकता है कि व्यक्तिगत-सी दिखने वाली कुँवर नारायण की कविता भी बृहत्जीवन-सत्य को वहन करती है। जब भी कोई मनुष्य किसी निर्दोष व्यक्ति को अपनी हिंसा का शिकार बनाता है तो उसका देह और वसन कभी न धुलने वाले रक्त से भीग चुका होता है। कवि हृदय जानता है कि यह हिंसात्मक मनोवृत्ति जो अपनी ज़द में सम्पूर्ण मानव-समाज को ले रहा है वह कितना घातक है। कवि प्रेम को इस मनोवृत्ति के विकल्प के रूप में देखते हैं। इनकी कविताओं में प्रेम की उपस्थिति एक उदात्त जीवन-मूल्य के रूप में है जिसको अपनाना केवल सहृदयता की बात नहीं है बल्कि बुद्धिमत्ता की भी बात है। वह बुद्धिमत्ता इसलिए है क्योंकि उसके अभाव में आज का मनुष्य चाहे कितनी ही भौतिक प्रगति कर ले वह जीवन की सार्थकता से निरंतर दूर जा रहा है।

कुँवर जी की कविता में प्रेम देह की संकीर्णता का अतिक्रमण कर सम्पूर्ण अस्तित्व को अपनी ज़द में ले लेता है।सम्पूर्ण जीवन के विस्तृत क्षेत्र में प्रेम की यह उपस्थिति उसे वह अमरता प्रदान करती है जो मनुष्य के अस्तित्व से घनिष्ठ रूप में जुड़ा है। अस्तित्व से प्रेम का यह जुड़ाव बतलाता है कि प्रेम का कोई विकल्प नहीं है, वह तो हमारी अनिवार्य ज़रूरत है जिसे हमने बिसरा दिया है। कुँवर नारायण लिखते हैं-

“तुम्हारा यह परेशान सवाल

‘आख़िर तुम मुझसे चाहते क्या हो’

कैसे बताऊँ उस चाहने का अता-पता

जिसके बाहर मेरा जीवन

कहीं है ही नहीं

जिसका सौन्दर्य

वृक्षों से छनती धूप की तरह

झिलमिल है।"[3]

प्रेम अपनी गरिमा खो देता है जब वह सिर्फ़ देह तक सीमित हो और प्रेम से गरिमामय कोई भाव नहीं जब उसका विस्तार देह से आत्मा तक हो। प्रेम जब देह से आत्मा तक फैल जाता है तो व्यक्ति जिससे प्रेम करता है वह दूजा नहीं रह जाता, वह एक-दूसरे में अभिन्न रूप से शामिल हो जाता है। यह आत्मिक मिलन स्थूल के उस अंतर को पाट देता है जिसके सहारे कोई व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ और सामने वाले को हीन मानने लग जाता है। कुँवर नारायण की प्रेमपरक कविताओं में भी संभवतः यह प्रयास रहा हो कि आज का मनुष्य जिस अंधी प्रतिस्पर्द्धा और श्रेष्ठताबोध से ग्रसित हो गया है उससे उसे बाहर निकालने का मार्ग तलाशा जाए। कुँवर जी की पँक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"कैसे बताऊँ हो सकता है

एक ऐसा भी चाहना

जिसे शब्द नहीं दिये जा सकते

शायद एक ऐसी अंतरंगता

जो अंगों की भाषा से व्यंजित हो

और उनसे मुक्त भी

छूना चाहता हूँ तुम्हें

जैसे आग को छूती है आग

पानी को छूता है पानी

और छूते ही उनके बीच से

मिट जाता है स्थूल का अन्तर”[4]

अंगों की भाषा से व्यंजित होते हुए भी उससे मुक्त होने में प्रेम की उदात्तता है। और, इस उदात्त प्रेम के प्रति आग्रह का भाव कुँवर जी की उदात्त जीवन-दृष्टि का द्योतक है। इन कविताओं में प्रेम के जिस रूप को व्यक्त किया गया है उसका उत्स उन्माद में नहीं है अपितु यह प्रेम अपना आधार संवेदना की गहराइयों से ग्रहण करने के बावजूद विवेक का दामन नहीं छोड़ता है। कुँवर नारायण नेऐतिहासिक चरित्रों पर आधारित कई कविताएँ भी लिखी हैं, उनमें से एक कविता अमीर ख़ुसरो पर आधारित है।इसमें अमीर ख़ुसरो के बहाने कवि ने सत्ता के आतंक के बौनेपन को भी दिखाया है और कवि के आज़ाद-ख़यालात के ऊँचे कद को भी। कुँवर नारायण आने वाली पीढ़ियों को इतिहास के परंपरागत पाठ से इतर उस पाठ से रू-ब-रू करवाना चाहते हैं जो ‘शाही खेल तमाशों’ से इतर हो। निम्न पँक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

“ऊब गया हूँ इस शाही खेल तमाशे से

यह ‘तुग़लकनामा’- बस, अब और नहीं।

बाकी ज़िन्दगी मुझे जीने दो

सुल्तानों के हुक़्म की तरह नहीं

एक कवि के ख़यालात की तरह आज़ाद

एक पद्मिनी के सौन्दर्य की तरह स्वाभिमानी

एक देवलरानी के प्यार की तरह मासूम

एक गोपालनायक के संगीत की तरह उदात्त

और एक निज़ामुद्दीन औलिया की तरह पाक।"[5]

कुँवर जी अमीर ख़ुसरो को सिर्फ़ एक कवि के रूप में नहीं देखते बल्कि ऐसे साहस से संबद्ध करके देखते हैं जो उन राजाओं को भी संगीत और कविता की भाषा सुना गया जिसने युद्ध की भाषा को बोलना और बरतना सीखा था। इतिहास को इस रूप में समझने का प्रयत्न करना कुँवर जी की उस दृष्टि से हमारा परिचय कराता है जिसमें कोई काल अपने 'भौतिक समय' की अवधारणा का परित्याग कर सभ्यता के विस्तार का रूप ले लेता है। ख़ुसरो को "नृशंस युग की सबसे जटिल पहेली" मानने वाला कवि हमें अपने इतिहास को समझने के लिए नए तरीक़े देता है। ऐसा तरीका जिसमें केवल सत्ता और सत्ताधीशों के माध्यम से किसी कालखंड को समझने के बजाय, उस काल में प्रेमगीत लिखने वाले कवि और दर्द को स्वर देने वाला संगीत भी महत्त्व पाए। कवि अपने जीवन को भी प्रेम में बीतता हुआ देखना चाहते हैं। यह चाह मारकाट वाली प्रतिस्पर्द्धा से इंकार है-

"इतना कुछ था दुनिया में

लड़ने झगड़ने को

मारने मरने को

पर ऐसा मन मिला

कि ज़रा-से प्यार में डूबा रहा

और जीवन बीतता रहा।"[6]

कुँवर नारायण का पूरा जीवन इसी प्रेम में बीतता रहा है। उनके जीवन को नज़दीक से देखने वाले विद्वानों का यह मत रहा है कि उनकी कविता को उनके जीवन से पृथक करके नहीं देखा जा सकता है। जिन मूल्यों को कुँवर नारायण ने अपनी कविता में भाषा की सूरत में बरता है जीवन में भी उन मूल्यों को व्यावहारिक रूप से जिया है। प्रेम एक ऐसा ही मूल्य है। एक कवि; भाषा, काल और देश की सीमा का अतिक्रमण तभी कर सकता है जब उसका हृदय किसी भी तरह के बंधन से मुक्त हो। कुँवर नारायण किसी भी तरह की कट्टरता को न अपने जीवन में जगह देते हैं न अपनी कविता में-

"अंग्रेजों से नफरत करना चाहता

जिन्होंने दो सदी हम पर राज किया

तो शेक्सपीयर आड़े आ जाते

जिनके मुझ पर न जाने कितने एहसान हैं।

मुसलामानों से नफ़रत करने चलता

तो सामने ग़ालिब आकर खड़े हो जाते।"[7]

कवि की वैचारिकी कुछ इस तरह की हो गयी है कि वे किसी से नफ़रत नहीं कर पा रहे। उन्हें नफ़रत करने की तमाम वजहें बेमानी मालूम होती हैं क्योंकि उनके पास हर किसी से हर

स्थिति में प्यार करने की वजहें मौज़ूद हैं। कुँवर नारायण की प्रबुद्ध चेतना उस उन्मादी भीड़ में शामिल होने से इंकार करती है जो किसी बुराई का सामान्यीकरण कर हमें एक पूरे समुदाय से नफ़रत करना सिखाता है। इन कविताओं के अर्थ में और विस्तार होता है जब हम अपने आस-पास के सन्दर्भों से इसे जोड़ते हैं। आख़िर क्या वजह है कि हमें अंग्रेजों के नाम से जनरल डायर याद आते हैं शेक्सपियर नहीं? क्या कारण है कि मुस्लिमों के नाम से हमारी आँखों के सामने उन मुस्लिम आक्रान्ताओं का ही चेहरा आता है जिन्होंने हिन्दुस्तान पर हमला किया? ग़ालिब नहीं याद आते! कवि इस सामूहिक सोच को अपनी कविता द्वारा चुनौती देते हैं। हमारे आस-पास नफ़रत का जो एक जाल बुना जा रहा है कुँवर नारायण की कविताओं का पाठक अगर उससे सीख ले तो वह उस जाल में फँसने से बचेगा। उपर्युक्त कविता में हम देख सकते हैं कि इतिहास के माध्यम से सकारात्मकता के उस स्तर तक कैसे पहुँचा जाए जहाँ हम किसी से नफ़रत कर पाने की स्थिति में न हों।राजनीति अपने स्वार्थ के लिए गड़े मुर्दे को उखाड़कर हमें एक विशेष सम्प्रदाय, एक विशेष भाषा, एक विशेष देश के खिलाफ़ नफ़रत का पाठ सिखाती है पर कविता उससे इतर मार्ग दिखलाती है। कविता इस सत्य से अनजान नहीं है कि नफ़रत चाहे किसी के लिए भी हो वह सबसे पहले स्वयं के लिए घातक होती है।कुँवर नारायण की कविताएँ बौद्धिक कविताएँ हैं। कवि की बौद्धिकता ने प्रेम के महत्त्व को पहचाना है और जीवन से इसकी संगति को अनिवार्य माना है।प्यार की भाषा को कवि ने हर जगह एक-सा पाया है-

"मैंने कई भाषाओं में प्यार किया है...

और विश्वास किया कि प्यार की भाषा

सब जगह एक ही है"[8]

जब कोई विचारक या कोई कवि बार-बार प्रेम की तरफ़ लौटने की बात करता है, प्रेम की भाषा को जीवन में बरतने की बात करता है तो वह चुनौती देता है इतिहास में दर्ज उस मानसिकता को जिसने हिंसा के उन्माद में 'मदरसे' और 'किले' के फ़र्क को मिटा दिया। कुँवर नारायण की एक कविता है-'नालन्दा और बख़्तियार'। एक विजेता की महत्वाकांक्षाएँ सबकुछ जीतकर भी कितनी सारहीन हो सकती हैं!हिमालय को जीत कर लौटा बख़्तियार भी कितना अकेला हो सकता है यह समझने के लिए हमें इतिहास को परंपरागत रूप से देखने के बजाय उसपर भिन्न तरीक़े से विचार करना चाहिए। कुँवर नारायण ने अपनी कई कविताओं में इतिहास को पारंपरिक दृष्टि से इतर रूप में देखा है। उनके लिए उन विजेताओं का जीवन निरर्थक है जो किताबों का महत्त्व नहीं जानते, जिनके लिए अर्थ ही सबकुछ है। कुँवर नारायण की निम्न पँक्तियों को पढ़ते हुए हम देख सकते हैं कि एकविचारक की चिंतन-पद्धति एक आक्रमणकारी या विजेता की चिंतन-पद्धति से किस रूप में भिन्न है-

"हत्याओं, लूटपाट और आगज़नी के इतिहास में

नालन्दा, एक जलता हुआ पन्ना, यूँ भी मिला-

"सोना चाहिए था, बिरहमन, सोना : ये क़िताबें नहीं

अफ़सोस, यह तो 'मदरसा' निकला, हम समझे 'क़िला'!"

लड़ाई से मुँह फेर कर भाग गये थे कुछ विचारक

घने जंगलों की ओर- केवल कुछ ग्रन्थ बचा कर;

वे आज भी भाग रहे उसी तरह, 'मदरसे' और 'क़िले' में

फ़र्क़ न कर सकनेवाले विजेताओं से घबरा कर !..."[9]

पिछले कुछ दशकों में विचार और बौद्धिकता के विषय में हमारी समझ ऐसी बन गयी है कि हमने प्यार को भावना से जोड़कर देखा है, उसे बुद्धिमत्ता से जोड़कर नहीं देखा। कुँवर नारायण अपनी कविताओं में प्यार की तरफ़ लौटने की बात बार-बार करते हैं। यह प्यार की तरफ़ बार-बार लौटना कुँवर नारायण का बौद्धिक चुनाव है। वे ज़िन्दगी पर जब भी विचार करते हैं तो प्रेम स्वतः उसके केंद्र में आ जाता है। उनकी दृष्टि में जीवन की सभी भूल-चूक के सुधार का मार्ग इसी प्रेम से होकर गुज़रता है।कवि यह मानते हैं कि प्रेम में विश्वास बनाए रखना मनुष्य में विश्वास बनाए रखना है। वे मनुष्य को प्रेम से पृथक करके नहीं देख पाते हैं। कुँवर जी उस भाव-भूमि के कवि हैं, जिसमें कविता का उद्देश्य क्रांतिकारिता मात्र नहीं है अपितु यहाँ कविता के मायने हैं-आदमी की भाषा में प्रेम का पुनर्वास-

"लौटना है मुझे

प्रेम की तरफ़

विश्वास बनाये रखना है

मनुष्य में

सिद्ध करते रहना है

कि मैं टूटा नहीं"[10]

सवाल उठता है कि प्रेम की तरफ़ लौटने की बात कवि क्यों कर रहे हैं? जब इसके कारणों पर हम विचार करते हैं तो इसका उत्तर हमें आज की जीवन-शैली में मिलता है। जीवन की आपाधापी में प्रेम को हमने तिरस्कृत किया है, और रोज कर रहे हैं। कुँवर नारायण जीवन को ऑब्जर्व करने वाले कवि हैं।हमारी जीवनशैली में आये बदलाव को कवि देखता है और उसपर

प्रतिक्रिया देने से भी नहीं चूकता है। यह प्रतिक्रया इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके मार्फ़त कुँवर जी उस जीवन-शैली और जीवन-विवेक को ढूँढने का प्रयत्न करते हैं, जिसे हमने बिसरा दिया है। 'प्रेम' का होना मानव जीवन के लिए गौरव है और इसकी विस्मृति एक त्रासदी है। यदि हमारे जीवन में प्रेम की जगह हाशिये पर है तो यह ख़तरे की घंटी है। और अगर इस ख़तरे की घंटी को हम अनसुना कर रहे हैं तो यह और भी ज़्यादा ख़तरनाक है। प्रेम का हाशिये पर जाना हमारे जीवन-विवेक के कुंद हो जाने का परिचायक है।इस सन्दर्भ में कुँवर नारायण की निम्न पँक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"शायद 'प्रेम' भी ऐसा ही एक शब्द है

जिसकी अब यादें भर बची हैं

भाषा में

ज़िन्दगी से पलायन करते जा रहे हैं

ऐसे तमाम तिरस्कृत शब्द

जो कभी उसका गौरव थे।"[11]

'प्रेम' मनुष्य कि भाषा से यूँ ही विलुप्त नहीं हो रहा है, उसका तिरस्कार हुआ है, और बार-बार हुआ है। कवि जानते हैं कि प्रेम का ज़िन्दगी में होना मनुष्य के लिए गौरव है और प्रेम जैसे शब्द का केवल यादों में होना, ज़िन्दगी से पलायन कर जाना एक अपूरणीय क्षति है।'प्रेम' जैसा भाव पूरी गरिमा के साथ लेकिन बिना अपनी कोमलता नष्ट हुए कुँवर जी की कविताओं में व्यक्त हुआ है। प्रेम को न सिर्फ़ विभिन्न रूपों में इनकी कविताओं में अभिव्यक्त होते हुए पाते हैं बल्कि कुँवर नारायण की कविताओं का पाठक कई बार स्वयं को ऐसे सवालों से घिरा पाता है

जिसका जवाब ढूँढ़ते हुए वह जीवन में प्रेम की अनिवार्यता को समझ पाता है। कुँवर नारायण के विषय में रमेशचंद्र शाह लिखते हैं- "प्यार इस कवि के लिए सर्वोच्च मानव-मूल्य है, किन्तु भावुकता से निरपेक्ष सर्वथा निर्भ्रान्त रूप से...।"[12]प्रेम को भावुकता का विषय न मानना कुँवर नारायण की प्रेम संबंधी दृष्टि को अन्य कवियों से पृथक करती है और हमें प्रेम के विषय में भिन्न तरह से सोचने के लिए प्रेरित करती है। ध्यातव्य है कि प्रेम मनुष्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है। कुँवर नारायण इस प्रेम को एक ऐसी उदात्त अभिव्यक्ति मानते हैं जो अकेलेपन में अनुभूति का हिस्सा बन हमारी आत्मा को रिक्त होने से बचाता है। इसकी अहमियत तब ठीक-ठीक समझ में नहीं आती जब हम लोगों और चीजों की भीड़ से घिरे होते हैं, इसकी महत्ता तो नितांत अकेलेपन में समझ आती है। बकौल कुँवर नारायण- "अगर कविता की जीवन में कोई उपयोगिता है तो चीज़ों और लोगों की भीड़ में नहीं, शायद अस्तित्व के उस निर्मम यथार्थ में खोजना होगा जहाँ हम बिल्कुल अकेले होते हैं। जब हम महसूस करते हैं कि इस अकेलेपन को केवल चीजों और लोगों से नहीं भरा जा सकता : उसके लिए एक ऐसी अनुभूति भी चाहिए जिसमें प्रेम या विश्वास जैसा उदात्त कुछ भी शामिल हो।"[13]

➢ कुँवर नारायण के काव्य में जिजीविषा

कुँवर नारायण अपने पाठकों के समक्ष एक ऐसे कवि के रूप में उपस्थित होते हैं जो विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी ज़िन्दगी से भागना नहीं चाहते हैं, वह ज़िन्दगी से जुड़ना चाहते हैं। ध्यान रहे कि यह जुड़ाव सिर्फ़ औपचारिक जुड़ाव नहीं है, वे ज़िन्दगी को झकझोरना चाहते हैं-

"मैं ज़िन्दगी से भागना नहीं

उससे जुड़ना चाहता हूँ।

उसे झकझोरना चाहता हूँ

उसके काल्पनिक अक्ष पर

ठीक उस जगह जहाँ वह

सबसे अधिक बेध्य हो कविता द्वारा।"[14]

कुँवर जी ज़िन्दगी की उस नब्ज़ को पकड़ते हैं जहाँ से उसे झकझोरा जा सके। उनकी कविताएँ कभी-कभी सवालातों की गुत्थी-सी मालूम होती हैं। इन कविताओं का पाठक स्वयं को कई बार जटिल मनोदशा में पाता है। इन कविताओं से गुजरते हुए हमें मालूम होता है कि वास्तव में ज़िन्दगी उदंड महत्वाकांक्षाओं और घोर निराशाओं के बीच अपनी सार्थकता पाती है। और, अगर किसी एक ओर पलड़ा झुका तो ज़िन्दगी अपने मायने खोने लगती है। कुँवर जी जीवन को उसकी सम्पूर्णता और जटिलता में स्वीकार करते हैं। वे अपनी कविताओं में कभी भी ज़िन्दगी को आसान वर्गों में विभाजित कर उसपर चिंतन नहीं करते क्योंकि वे अपने पाठकों को किसी भुलावे में नहीं रखना चाहते हैं। कवि जानता है कि जीवन संशिलष्ट है, तो समस्यामूलक भी होगा और समस्या से आँख चुराकर ज़िन्दगी आसान नहीं होने वाली। संभवतः इन्हीं कारणों से कुँवर जी अपनी कविता में ज़िन्दगी के नज़दीक जाते हुए दिखते हैं। ज़िन्दगी को नज़दीक से देखने कि इस प्रक्रिया में उनकी कोशिश रही है कि जीवन का मानवीय, सहानुभूतिपूर्ण और उदात्त पक्ष हमेशा निग़ाह में रहे।यही वजह है कि ये कविताएँ मनुष्य को बार-बार उसके उदात्त पक्ष का स्मरण कराती हैं। यह स्मरण रचनात्मक स्तर पर मनुष्य को इतना आंदोलित करने वाला है कि उसकी जीवंतता बरकरार रहे। कुँवर जी को पढ़ते हुए हमें यह अहसास होता है कि जीवन के हर क्षेत्र तक भाषा और कविता की पहुँच है और जीवन केकई महत्वपूर्ण क्षेत्र उन वस्तुओं से परे भी हैं जिन्हें हम नंगी आँखों से देख सकते हैं।इन कविताओं में जो जीने की इच्छा हम पाते हैं वह दरअसल जीवन को सिर्फ़ गुजारना नहीं है बल्कि यहाँ सार्थक जीवन जीने की इच्छा है। कुँवर जी की कविताओं में जो जिजीविषा हमें देखने को मिलती है वह उनके व्यक्तित्व का ही अंश है। अपने

जीवन के प्रारंभिक दौर में ही उन्होंने जिस तरह परिवार के सदस्यों की एक के बाद एक मृत्यु की त्रासदी को महसूसा, उसके बाद खुद को वही शख्स इस रूप में विकसित कर सकता है जिस रूप में कुँवर नारायण ने किया है मानो जिजीविषा जिसके जीवनदर्शन का प्रमुख अंग हो। बकौल कुँवर नारायण-

"जिजीविषा मेरे जीवन दर्शन का सर्वप्रमुख अंग है। मैंने अपने जीवनानुभवों में देखा है कि माँ नहीं, बहन नहीं, मेरी उम्र मुश्किल से 15-16 साल, फिर किसने मुझे सँभाला ? जीवन ने। कहीं न कहीं एक क्रम है जो बहुत सूक्ष्म, सरल और नाजुक चीजों को बचाता है। ऐसा नहीं कि सब कुछ यूँ ही छोड़ दिया गया है नष्ट होने के लिए बल्कि इन्हें बचाने की भी युक्तियाँ इन्हीं में रखी गई हैं, इसी जीवन में। जिसने इसे खोज लिया समझो उसने जीवन के सच्चे अध्यात्म को खोज लिया।"[15]

कुँवर नारायण की कविताओं के पात्रों में भी यह जिजीविषा कूट-कूट कर भरी है। नचिकेता की जिजीविषा का अंदाजा लगाइए कि वह मृत्यु की चौखट पर खड़े होकर जीवन के मायने तलाश रहा है।वह ज़िन्दगी की सार्थकता को तलाशने के लिए जिस जटिल मनोदशा से गुज़रता है वह इस बात का प्रमाण है कि नचिकेता अमरत्व की हद तक जीवन से प्यार करता है। ध्यातव्य है कि उम्र का अधिक होना जीवन को विशालता नहीं देता है बल्कि उन जीवन-मूल्यों को जीना जो मृत्यु पर भी हावी हो जीवन को विशालता देता है। यह सत्य है कि'आत्मजयी' को लिखने के उत्तरदायी कारणों में कुँवर नारायण का वह अतीत महत्वपूर्ण है जिसमें वे पारिवारिक सदस्यों की मृत्यु से जूझते हैं। कोई पाठक अगर सतही ढंग से इस खंडकाव्य का पाठ करेगा तो उसे यह मृत्यु की त्रासदी का काव्य लग सकता है परन्तुअगर सम्पूर्णता में इस कृति को पढ़ा जाए तो यह मृत्यु के भय पर विजय का प्रयास मालूम होता है। कुँवर नारायण ने भी इसे 'जीवन के पक्ष का काव्य' माना है-"आत्मजयी' का उत्स यद्यपि मृत्यु की त्रासदी का अनुभव रहा है...किन्तु,

उसकी परिणति मृत्यु के भय से मुक्ति ही है। उसके अस्तित्ववादी या मिथकीय होने की बातें होती रही हैं, पर मैंने उसे हमेशा जीवन के पक्ष का काव्य ही माना है।"[16]

कुँवर नारायण पौराणिक मिथकों और आख्यानों को भी जब अपने काव्य का विषय बना रहे होते हैं तो उनकी दृष्टि में इतनी सजगता रहती है कि इन पौराणिक पात्रों के माध्यम से जीवन-जगत से संबंधित प्रश्नों को उठाया जा सके। ये वे प्रश्न हैं जिनसे हमारा साक्षात्कार रोज होता है। कभी ये प्रश्न जटिल रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं, तो कभी जीवन की आम दिनचर्या का हिस्सा बनकर। कुँवर जी के यहाँ पुराण भी पुराने अर्थ में नहीं आते बल्कि वे नित-नवीन प्रश्नों को स्वर देने का माध्यम बनते हैं।यम से नचिकेता जो सवाल करता है वह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उस सवाल का सन्दर्भ कोई एक व्यक्ति नहीं है बल्कि उसका सन्दर्भ 'जीवन' है। मृत्यु की तरफ़ से जीवन को देखने का जो उपक्रम हम 'आत्मजयी' में पाते हैं वह जिजीविषा का उत्कृष्ट उदाहरण है। स्वयं कुँवर नारायण का भी मत है कि "'आत्मजयी' इस अर्थ में मृत्यु की निराशा के विरुद्ध एक मिथक भी है, और एक मनोवैज्ञानिक मोर्चा भी।"[17] कुँवर नारायण एक कवि के रूप में चिंतनपरक दृष्टि के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। वे अपनी सम्पूर्ण काव्य-यात्रा में अपनी कविता द्वारा व्यक्ति को बुद्धिमत्ता के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। यह चिंतन का भाव ही प्रश्न के उद्गम का कारण बनता है। 'आत्मजयी' के प्रकाशन के साथ ही इस बात पर मुहर लग गयी थी कि कुँवर जी कोरे भावुकता के कवि नहीं हैं। 'आत्मजयी' में नचिकेता के प्रश्न का संबंध मानव जीवन की संभावनाओं से है।नचिकेता के प्रश्नों ने कठोपनिषद् की कथा को आधुनिक परिप्रेक्ष्य दिया है। कुँवर नारायण मिथक की शक्ति से परिचित थे। उन्हें इस बात का भान था कि मिथक, अनुभूतियों के रूप में मानव चित्त में सदियों से संचित है। कवि को इस बात का ज्ञान था कि ये तमाम अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होने के लिए छटपटा रही हैं। यह अनायास ही नहीं है कि कुँवर जी का अभिमन्यू, चक्रव्यूह में घिरकर भी मृत्यु और अस्तित्व को एक साथ नये सन्दर्भों में अभिव्यक्त कर रहा है। चाहे 'आत्मजयी' का नचिकेता हो या 'चक्रव्यूह' का

अभिमन्यु या फिर 'वाजश्रवा के बहाने' का वाजश्रवा ये सभी पौराणिक पात्र होते हुए भी अपने समय के प्रश्नों से जूझ रहे हैं, और इन सभी पात्रों के माध्यम से कवि अदम्य जिजीविषा वाले उस मानवीय चरित्र को स्वर दे रहे हैं जिसका अपराजेय मन तमाम चुनौतियों के बीच संभावनाओं को तलाशना जानता है। ऐसा कुँवर नारायण इसलिए कर पा रहे हैं क्योंकि उन्हें मानवीय चरित्र में आस्था है। उनका मानना है कि "व्यक्ति को विकार की तरह पढ़ना जीवन का अशुद्ध पाठ है।"[18] कुँवर नारायण का प्रश्नाकुल मन मनुष्य को उसकी पूर्णता में विकसित करना चाहता है। वह एक समग्र मनुष्य चाहता है जो जीवन को वृहत्तर अर्थ दे सके।"अबकी अगर लौटा तो बृहत्तर लौटूंगा"[19] महज़ संकल्प नहीं है, यह संदेश भी है। मानवीय जीवन की सार्थकता को सिद्ध करने का संदेश। कई मायनों में कुँवर नारायण की कविता जीवन की पुनः खोज है। अपने पात्रों के माध्यम से कई दफ़ा कवि स्वयं को अभिव्यक्त कर रहे हैं। 'आत्मजयी' का नचिकेता कठोपनिषद् का पात्र होते हुए भी वर्तमान मानव जीवन को न सिर्फ अभिव्यक्त कर रहा है, अपितु वर्तमान जीवन की चिंताएं उसके भीतर धधक रही हैं। इसी तरह 'वाजश्रवा के बहाने' को भी विद्वानों ने इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भ की विचार-यात्रा माना है। इक्कीसवीं शताब्दी में बाज़ारवादी मानसिकता ने जिस प्रकार मानव की सोच और उसकी आंतरिक चेतना को प्रभावित किया है, 'वाजश्रवा के बहाने' में कवि उसका प्रतिपक्ष ढूंढते दिख रहे हैं।

कुँवर जी की कविताओं में जीवन इतना विशाल होता हुआ दिखता है कि मौत भी उसे अपने आगोश में न समा सके। कुमारजीव के विषय में जब कवि यह लिखते हैं कि "कभी-कभी चला जाता है वह अशरीर/ किसी अन्य समय में-जैसे बुद्ध के समय में-/ जीने एक अच्छा जीवन/ और छोड़ जाना चाहता है अपने समय पर/ उस की एक अक्षय छाप..."[20]तो यह अपनी ज़िन्दगी से पलायन का भाव नहीं है बल्कि जीवन को इतना विस्तार दे देना है कि वह शरीर की सीमा से मुक्त हो जाए। ध्यातव्य है कि मृत्यु व्यक्ति के शरीर को तो मार सकता है परन्तु समय के कपाल पर छपे व्यक्ति के कर्मों के छाप शरीर के ख़त्म होने के बाद भी रह जाते हैं।ज़िन्दगी सिर्फ़ उतना ही

नहीं है जो हम देखते हैं असल में भौतिक रूपमें दिखने वाली वस्तुओं और चीजों से इतर एक वृहद् संसार है जो यथार्थ न होते हुए भी हमारे जीवन से घनिष्ठ रूप में जुड़ा होता है। कई बार भौतिक जीवन के दबावों से वह हमें मुक्त भी करता है।उदाहरण के लिए जब हम काल्पनिक लोक में विचरण करते हैं तो पल भर के लिए वास्तविक जीवन के दुःख-दर्द से इतर जीवनानुभव को महसूसते हैं। इस पल हम एक 'समानान्तर इच्छालोक' रचते हैं। हमने जीवन से जो इच्छाएँ की हैं कई बार वह हमारी कल्पना का हिस्सा होती हैं। साहित्य में भी ये कल्पनाएँ अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति पाती हैं।कुँवर नारायण साहित्य-रचना और जीवनेच्छा की सदृश्यता को सकारात्मक रूप में लेते हैं। अपनी डायरी में इस संबंध में कुँवर जी लिखते हैं-

"जीवनेच्छा और साहित्य-रचना के बीच निकट सादृश्यता है। साहित्य शब्दों के बहुआयामी प्रयोग द्वारा ज़िन्दगी के दबावों से मुक्त करके एक समानान्तर इच्छालोक रचता है। 'मुक्ति' और 'रचना' का यह दुहरा एहसास यथार्थ से पलायन नहीं है, उसी अदम्य जीवनशक्ति का परिचायक है जो साहित्य और कलाओं की रचनाशीलता में प्रकट होती है।"[21]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कुँवर नारायण कविता के माध्यम से ज़िन्दगी में प्रेम को बरतने वाले कवि हैं। उनकी कविता प्रेम के महत्त्व को स्थापित करती है। वे प्रेम की ओर बार-बार लौटते हैं।वे जानते हैं कि ज़िद और क्रोध कितना वीभत्स रूप ले सकतेहैं। ये वो भाव हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व से करूणा का लोप कर देते हैं, उसे अहंकारी बना देते हैं। वे चाहते हैं कि मनुष्य का व्यक्तित्व सहिष्णुता, उदारता, क्षमा जैसे मूल्योंसे युक्त हो।यह प्रामाणिक सत्य है कि जिस हृदय में प्रेम का वास नहीं होतावहाँ घृणा अपनी जगह बना लेती है। इसका मनुष्य के व्यक्तित्व पर घातक प्रभाव देखने को मिलता है। कुँवर नारायण इस सत्य से अवगत थे कि मनुष्य का जीवन प्रेम के बिना सारहीन है इसलिए जब भी उन्होंने जीवन पर विचार किया प्रेम को केंद्र में रखा।

वहीं अगर जिजीविषा की बात की जाए तो यह कुँवर नारायण के काव्य-चिंतन में आदि से अंत तक मौजूद है।मनुष्य का जीवन किसी भी मुश्किल से बड़ा है और विपरीत से विपरीत परिस्थितियों से बाहर निकल आने की संभावना से युक्त है। कुँवर नारायण कहते भी हैं कि-'कोई भी दुःख मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं/ हारावही जो लड़ा नहीं।'कुँवर नारायण को जीवन की यह विशिष्टता आकर्षित करती है। जीवन को विकार की तरह पढ़ने को जीवन का अशुद्ध पाठ मानने वाला कवि जब अपनी कविताओं में जीवन के विविध रंगों को बिखेरता हैतो ज़िन्दगी की तमाम विद्रूपताएँ और विसंगतियाँ पीछे छूट जाती हैं। ऐसा नहीं है कि ज़िन्दगी की विसंगतियों से कुँवर नारायण आँखें चुराकर भागते हैं, वे विसंगतियों से दो-चार होते हैं और जीवन-विवेक के सहारे उससे मुक्ति का मार्ग तलाशते हैं। मनुष्य को समाज की नसों में बंद नाजुक स्पंद मानने वाला कवि जानता है कि तमाम विद्रूपताओं के बावजूद मानव में मनुष्यतर होकर लौटने की संभावना शेष है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. सुरेशचन्द्र गुप्त, आधुनिक कवियों के काव्य सिद्धान्त, पृष्ठ-104
2. निर्मल वर्मा, शताब्दी के ढलते वर्षों में, पृष्ठ-39
3. डॉ. नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पृष्ठ-352-362
4. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-18
5. वही, पृष्ठ-19
6. वही, पृष्ठ-40
7. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-95
8. कुँवर नारायण, परिवेश : हम-तुम, पृष्ठ-27
9. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं,पृष्ठ-121
10. वही, पृष्ठ-71
11. वही,पृष्ठ-70
12. कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-16
13. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-32
14. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-24
15. वही, पृष्ठ-26
16. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-134
17. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ- 37
18. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश,पृष्ठ-15
19. कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-108
20. वही, पृष्ठ-63
21. वही, पृष्ठ-53